रानी ने प्रसन्न होकर कहा—"तब तो आप भले आदमी हैं। आपके दर्शन पाकर मुझे बड़ा आनन्द मिला। यदि मेरे योग्य कोई सेवा-कार्य हो, तो कृपा कर बतलाइये।"

फकीर बोला—"देवि, धरती पर रहनेवाले मनुष्य बड़े दुःखी हैं। वह कपड़े पहिनना भी नहीं जानते। बेचारे शरीर पर पत्ते लपेट-लपेट कर अपना जीवन बिताते हैं। आप कृपा कर कोई ऐसी चीज दीजिये, जिसके द्वारा वह सूत कात सकें। रूई तो धरती पर बहुत होती है, जहाँ लोगों ने उसका सूत निकाल पाया, तहाँ कपड़े तैयार हुए ही समझिये।"

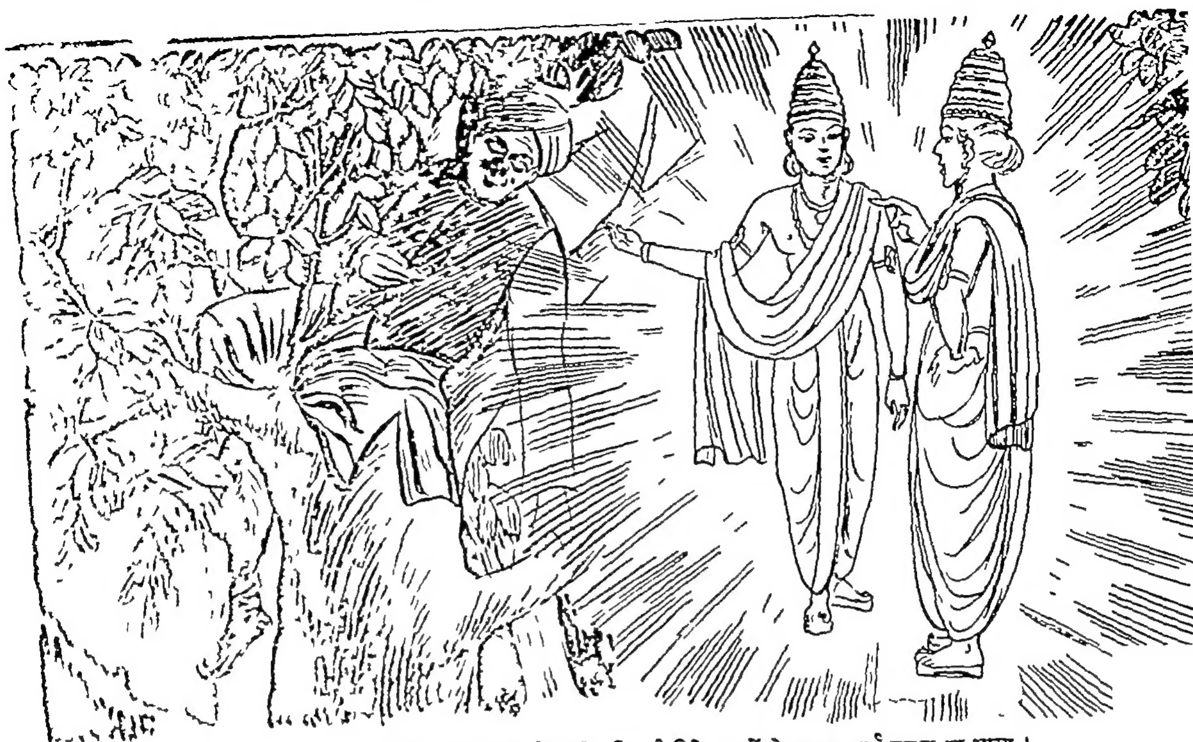
रानी ने कहा—"अच्छा-अच्छा, आप विराजिये तो सही! भगवान ने चाहा, तो मैं अभी आपकी इच्छा पूरी किये देती हूँ।" इसके बाद उसने फिरकी से फिर वही सवाल किया—"हाँ, तो तू किस रूप में धरती पर जाना चाहती है?"

फिरकी ने आँखों में आँसू भर कर जवाब दिया—"श्रीमती जी, मैं तो वहाँ किसी भी रूप में नहीं जाना चाहती। यदि आप मुझे वहाँ भेजना ही चाहती हैं, तो ऐसे रूप मे भेजिये, जिससे मैं सदा सभी मनुष्यों की सेवा कर सकूँ, उनका मन बहला सकूँ और उनसे आदर भी पा सकूँ।"

रानी मुसका कर बोली—"मैं मानती हूँ फिरकी, तू सचमुच बड़ी चतुर है। तूने एक साथ तीन ऐसी बड़ी-बड़ी बातें माँगी हैं, जिनसे तू धरती पर भी सदा देवी बनकर रहेगी। खैर, कोई बात नहीं, मैं तुझे अभी ऐसा रूप देती हूँ, जिससे तेरी इच्छा पूरी होने में कोई बाधा न रहेगी।" यह कह कर रानी ने चुल्लू मे थोड़ा-सा पानी लिया और कुछ मन्त्र पढ़ कर फिरकी पर छिड़क दिया। फिर क्या था, फिरकी फौरन तकली बन कर खट से गिर पड़ी। रानी ने झपट कर वह तकली उठा ली और फकीर को दे दी। फकीर ने तकली लेते-लेते पूछा—"इसका क्या होगा देवी? यह तो बहुत छोटी चीज है।"

रानी ने उत्तर दिया—"चीज छोटी तो जरूर है, पर इससे लोगों का बहुत बड़ा काम निकलेगा। इसके द्वारा उनको सूत मिलेगा, जिसके कपड़े बुने जायेंगे। बच्चों को यह खेलौने का काम देगी और फुरसत के समय स्यानों का मन बहलाया करेगी। वह चाहेंगे, तो आपस मे खेलते-खेलते या गप-शप करते हुए भी इसके द्वारा सूत निकालते रहेंगे। बस, ले जाइये.. ..।"

कहते हैं उसी तकली से मनुष्य ने कातना सीखा और तकली के विकास के साथ ही सभ्यता का विकास हुआ।



रात को सपने में उसे दो व्यक्ति दिखाई दिये, उनमें से एक था कर्म दूसरा था भाग्य।

सिन्धी लोककथा

जुलाहा और भाग्य देवता

सावित्री देवी वर्मा

एक शहर में एक जुलाहा रहता था। वह अपने काम में बहुत निपुण था। रंग-रंग के धागों में सुनहली और रुपहली तारें मिला कर वह ऐसे सुन्दर-सुन्दर बेल-बूटे डालता था कि जो कोई भी उसका बुना हुआ वस्त्र देखता दंग रह जाता। पर उन बढ़िया और महंगे कपड़ों को केवल राजे-महाराजे ही खरीद सकते थे। इस कारण उसकी बिक्री भी अधिक नहीं होती थी। उसे हमेशा पैसे की कमी बनी ही रहती थी, जिस-किस तरह से उसका गुजारा भर हो पाता था।

एक दिन वह अपनी पत्नी से बोला—"जुलाहिन, देखो हमारे पड़ोसी भाई केवल मोटा कपड़ा बुनते हैं, ये लोग काम में भी इतने होशियार नहीं हैं, पर तो भी इनकी आमदनी मुझ से चौगुनी है। इस गाँव में कोई मेरे गुणों का ग्राहक ही नहीं है। अतएव मैं तो परदेश जाकर अपनी किस्मत आजमाने की सोच रहा हूँ। शेर भूखों मर जाता है पर चारा नहीं खाता। मैं एक कारीगर जुलाहा होकर साधारण जुलाहों के सदृश मोटा-झोटा कपड़ा तो बुनने से रहा।"

यह सुनकर जुलाहिन बोली—"देखो जी, मेरी बात सुनो, परदेश जाने से कुछ लाभ नहीं। जब तक भाग्य देवता की कृपा नहीं होती परदेश जाकर भी कुछ नहीं बनेगा। जब भाग्य अच्छे दिन आवेंगे, तो बनते देर नहीं लगेगी।"

जुलाहा बोला—"तू तो निकम्मेपन की बातें करती है। बिना उद्यम के तो कोई फल

नहीं मिलता। व्यंजनों से भरी थाली चाहे सामने धरी रहे, पर जब तक कोई कौर हाथ से उठा कर मुँह में नहीं डालेगा, भोजन पेट मे कैसे जा सकता है ? कभी तूने आज तक सुना भी है कि सोते हुए शेर के मुँह में हिरण खुद चला गया हो ? मेरी राय में तो प्रत्येक मनुष्य को चेष्टा करनी चाहिये। उद्यम करने पर भी अगर फल नहीं मिले, तो इसमें उस मनुष्य का दोष नहीं है, दोषी तो भाग्य है।"

इस प्रकार अपनी स्त्री को समझा-बुझा कर वह जुलाहा एक बड़े शहर में धनोपार्जन की इच्छा से आया। वहाँ आकर उसका व्यवसाय थोड़े ही दिनों में चमक उठा। उसके बनाये कपड़ों की सेठ-साहूकारों तथा राजे-महाराजों में खूब खपत हुई। मुँहमांगी कीमत पाकर उसने अपना रोजगार वहाँ अच्छा जमा लिया।

इस प्रकार तीन वर्ष तक उस शहर में रह कर उसने तीन सौ सोने की मोहरें जोड़ लीं।

अब उसने सोचा घर चलना चाहिये। मैं अपनी जुलाहिन को जाकर जब इतना धन दूंगा तब वह कितनी खुश होगी ! और तब मैं उसे अपने आते समय की बात याद दिलाऊगा कि देख अगर मैं तेरे कहे में आकर परदेश न जाता तो इतना धन इसी गाँव में बैठे रहने से तो नहीं मिलता।

इस प्रकार मंसूबे बांधता हुआ वह अपने गाँव की ओर चल दिया। मार्ग मे उसे एक जंगल में रात पड़ गई। चोर, डाकुओं तथा हिंसक जानवरों के डर से वह एक पुराने बरगद के पेड़ पर चढ़ गया। यात्रा से थका-हारा तो वह था ही, तने का सहारा लेकर कुछ देर में ही वह सो भी गया।

रात को सपने मे उसे दो व्यक्ति दिखाई दिये, उनमे से एक था कर्म दूसरा था भाग्य।

भाग्यदेव कर्मदेव से बोले—"कर्मदेव ! तुम्हे तो मालूम है कि इस जुलाहे के नसीब में केवल रोटी-कपड़े भर का सुख लिखा है, फिर भला तुमने इसे उठा कर तीन सौ सोने की मोहरे कैसे दे दीं ?"

कर्मदेव बोले—"भाग्यदेव, मेरा काम तो उद्यमशीलों को उनकी मेहनत का फल देना है। जो प्रयत्न करेगा उसे उसका फल मिलना ही चाहिये। अब आगे जैसा तुम्हे उचित लगे करो।"

कर्मदेव और भाग्यदेव का यह वार्तालाप सुन, जुलाहा हड़बड़ा कर उठ बैठा। पर जब उसने अपनी थैली खोली तो उसमें फूटी कौड़ी भी नहीं बची थी। यह देख कर जुलाहा कलपने लगा कि हाय ! इतनी मुश्किलों से तो धनोपार्जन किया और अब उसे जाते एक क्षण भी नहीं लगा। भला खाली हाथ गाँव जाकर मैं अपनी स्त्री और मित्रों को कैसे मुँह दिखाऊंगा ?

यह सोच कर वह फिर उसी शहर मे लौट आया और एक ही वर्ष में दुगुने परिश्रम से उसने पाच हजार मोहरें कमा कर फिर जमा कर लीं।

अब वह अपने गाँव की ओर दूसरे मार्ग से चल दिया। परन्तु होनहार ऐसी कि सूर्यास्त होने पर वह उसी बरगद के पेड़ के पास आन पहुँचा। यह देख कर जुलाहा बड़ा ही परेशान हुआ कि हाय ! देखो, लाख चेष्टा करी पर होनहार वहीं ले जाकर छोड़ती है,

जहां कुछ होने को होता है। यह दूसरा मार्ग भी आकर उसी चौरस्ते से मिल गया और मैं भटकता हुआ फिर इसी जंगल में आ पड़ा। दिखता है, आज की रात भी इसी मनहूस पेड़ पर ही बितानी पडेगी।

रात को आँख लगने पर फिर सपने में जुलाहे को भाग्य देवता और कर्मदेवता दिखाई पडे। उसी दिन की तरह फिर भाग्यदेवता ने कर्मदेवता को उलाहना दिया—"इस जुलाहे को तुमने क्यों इतना धन दिया जब कि इसके भाग्य में केवल रोटी-कपड़ा लिखा है ?"

कर्मदेव ने भी उत्तर दिया—"मनुष्य को कर्म का फल देना मेरा धर्म है, वह फल को भोग सके या न यह तुम्हारी इच्छा पर है।"

घबडा कर जब जुलाहे की आँख खुली तो उसने देखा उसकी थैली फिर खाली पडी थी। अब तो जुलाहे ने अपना सिर पीट लिया। दूसरी बार भी अपना सर्वस्व खोकर उसे बडी निराशा हुई। वह सोचने लगा धन के बिना इस ससार में जीवन ही व्यर्थ है। यह विचार कर अपनी पगडी को पेड से लटका कर उसने दोनों छोरों को बाध कर फदा बनाया और जैसे ही वह गले मे फासी लगाने को तैयार हुआ भाग्यदेव ने सामने आकर उसका हाथ पकड लिया और बोले—"सुनो भाई! अभी तुम्हारी आयु शेष है। तुम आत्मघात करने की चेष्टा मत करो। जाओ, तुम अपने घर जाओ। पर मैं तुम्हें एक वरदान दूंगा। कहो तुम्हे क्या चाहिये ?"

जुलाहा बोला—"अगर यह बात है तो आप मुझे धनवान बना दें।"

यह सुनकर भाग्यदेव बोले—"पर तुम धन लेकर भी क्या करोगे ? धन का भोग तुम्हारे नसीब मे नहीं लिखा है।"

जुलाहा बोला—"तो भी मुझे धन चाहिये। इस ससार में कितने ऐसे धनी पुरुष हैं जो अपने अस्वास्थ्य या कंजूसी के कारण स्वयं धन का भोग करने में असमर्थ है, पर धनी होने के कारण उनका समाज मे मान है। सगे-सम्बन्धी उन्हे घेरे रहते हैं। लोग उनके व्यवहार और कमियों की उनके मुंह पर आलोचना करने की धृष्टता नहीं करते। मेरे नसीब मे धन का सुख नहीं होगा तो कोई बात नहीं। पर मैं धनी कहलाना चाहता हूँ।"

भाग्यदेव—"अगर ऐसी बात है तो तुम फिर शहर को लौट जाओ। वहाँ तुम्हे एक सौदागर के दो पुत्र मिलेंगे। उनमे एक तो धन-जोडू है, दूसरा धन उडाऊ है। तुम उन दोनों में से जिसकी तरह का बनना पसन्द करोगे, वैसा तुम्हे बना दिया जाएगा।"

यह कह कर भाग्यदेव अन्तर्ध्यान हो गये।

अब तो जुलाहा शहर आकर धन-जोडू का पता पूछता-पूछता एक गली में आया। गली वालों में से एक से उसने पूछा—"भाई यहाँ पर कोई धन-जोडू सौदागर-पुत्र रहता है ?"

तो वह बोला—'रहता होगा कोई कंजूस-मक्खीचूस। हमें उससे क्या मतलब ?"

दूसरा चिढ़ कर बोला—'तुम परदेसी मालूम होते हो। सवेरे-सवेरे इस मनहूस का नाम सुना दिया, राम जाने आज रोटी भी नसीब होगी कि नहीं ?"

जुलाहे ने सोचा कितना ही बडा कुयश कमाया है इस धनजोडू ने! कोई उसका नाम तक सुनना नहीं चाहता। खैर, मैं खुद ही उसका घर ढूढने की चेष्टा करता हूँ।

ढूंढते ढूंढते जुलाहे को आखिर मे धन-जोडू का घर मिल ही गया। धन-जोडू की

स्त्री-बच्चे और नौकर-चाकरों द्वारा दुतकारे जाने पर भी जुलाहा उसके आंगन में जाकर बैठ गया। रात को साहूकार की स्त्री ने बे-मन से उसे भोजन भी करा दिया। वह अपने पति के स्वभाव से भली प्रकार परिचित थी इस कारण किसी भूखे-प्यासे के प्रति सहानुभूति दिखाने का उसका साहस नहीं होता था।

खैर, रात को जुलाहा वहीं आगन में सो गया। अब सपने में उसे फिर कर्मदेव और भाग्यदेव दिखाई दिये। भाग्यदेव ने कर्मदेव से पूछा—"कर्मदेव, भला तुमने यह क्या किया, इस धन-जोड़ू के नसीब में तो पैसा खर्चना लिखा ही नहीं है, फिर इस जुलाहे को भोजन खिलवा कर तुमने यह फालतू खर्च क्यों करवाया ?"

कर्मदेव बोला—"भाग्यदेव, अब मैंने जो उचित समझा कर दिया, आगे तुम्हारी इच्छा, चाहे जिस तरह इस कमी को पूरा करो।"

बस, दूसरे दिन होनहार के वश होकर धन-जोड़ू बीमार पड़ गया और इस प्रकार उसे कई दिन तक फ़ाक़ा करना पड़ा और भूखा-प्यासा जुलाहा भी वहाँ से धन-उड़ाऊ की खोज में चल दिया। उसकी गली में घुसते ही बच्चे बच्चे के मुँह से उसने धन-उड़ाऊ की प्रशंसा सुनी और वे उसे सौदागर-पुत्र के घर तक छोड़ आये।



धन-उड़ाऊ ने जुलाहे की बहुत आवभगत की। और उसे पेट भर भोजन खिलाया, नया जोड़ा वस्त्र पहिनने को दिया।

धन-उड़ाऊ ने जुलाहे की बहुत आवभगत की। और उसे पेट भर भोजन खिलाया; नया जोड़ा वस्त्र पहिनने को दिया और उसकी सुख-सुविधा का प्रबन्ध करके वह सोने चला गया।

अब रात को सपने में जुलाहे को फिर भाग्यदेव और कर्मदेव दिखाई दिये। भाग्यदेव कर्मदेव से बोले—"भाई कर्मदेव, इस धन-उड़ाऊ ने तो जुलाहे की आवभगत में अपनी रही-सही पूंजी भी खर्च कर दी है। अब इसका कल खाने-पीने का काम कैसे चलेगा ?"

कर्मदेव बोले—"अच्छे कर्म करने की प्रेरणा देना मेरा काम है, अब बिगड़ी बात बनाना तुम्हारे हाथ में है। कुछ भाग्य का चमत्कार दिखाओ।"

दूसरे ही दिन राजदरबार से एक कर्मचारी आया और धन-उड़ाऊ को राजा की ओर से रुपयों की एक थैली भेंट कर गया।

यह देखकर जुलाहा सोचने लगा कि धन-जोड़ के सदृश करोड़पति बनने से धन-उड़ाऊ के सदृश परोपकार करना और मस्त रहना लाख दर्जे अच्छा है। क्योंकि धन की सार्थकता उसके सद्व्यय में ही है। जिस धनी का धन किसी के काम न आवे उससे तो निर्धन रहना अच्छा। धर्म का आचरण करने से ही मनुष्य धर्मात्मा कहलाता है, केवल धर्मोपदेश पढ़ लेने मात्र से कोई धर्मात्मा नहीं बन जाता। सो हे भाग्यदेवता! आप मुझे धन-उड़ाऊ सदृश धनी बना दें तो अच्छा है, मुझे धन-जोड़ के जीवन में कुछ सार्थकता नहीं प्रतीत होती।

जुलाहे की इच्छानुसार भाग्यदेवता ने उसे धन-उड़ाऊ सदृश धनी बना दिया। वह गाँव लौट आया, वहाँ उसका धंधा खूब चमक गया, पर साथ-ही-साथ वह जितना कमाता उतना ही परोपकार में खर्च भी कर देता था। इस प्रकार वह चाहे धन न बटोर सका हो पर उसने यश खूब बटोर लिया। इसी में जुलाहा और जुलाहिन संतुष्ट थे।



मनुष्य की बेटी

रामचन्द्र शर्मा

एक गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा विद्वान् और सदाचारी था। उसकी स्त्री भी बड़ी सुशील और घर के काम-काज में चतुर थी। उनके केवल दो सन्तानें थीं—एक लड़का और एक लड़की। माता-पिता अपने दोनों बच्चों को बड़ा प्यार करते थे और उनको सद्गुणी और सदाचारी बनाने का प्रयत्न करते रहते थे। यद्यपि लड़का बड़ा था, पर लड़की अधिक चतुर थी। माता-पिता का भी इस पर विशेष प्रेम था। लड़की धीरे-धीरे बढ़ने लगी और विवाह-योग्य हो गई।

माता-पिता को यह पता न था कि लड़की इतनी जल्दी विवाह-योग्य हो जायगी। उन्होंने कभी ख्याल ही नहीं किया था कि उन्हें लड़की के लिये वर ढूँढ़ना है। एक दिन जब वह अपनी माँ के पास खड़ी थी तो उसे देख कर माँ को ऐसा लगा कि वह कद में उसके बराबर हो गई है, और अब उसके विवाह की फिक्र करनी चाहिये। उसी दिन शाम को ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा—"लड़की विवाह-योग्य हो गई है, अब इसके विवाह की फिक्र करनी चाहिये।" ब्राह्मण भी लड़की को इतनी जल्दी सयानी होते देख कर दंग रह गया और पत्नी से बोला—"तुम ठीक कहती हो, अब मुझे इसके लिये वर ढूँढ़ना चाहिये।"

यह कह कर ब्राह्मण चिन्ता में डूब गया। उसने पंचांग उठाया। वह यह देखना चाहता था कि विवाह कब शुभ बनता है। पंचांग देखने पर विदित हुआ कि विवाह चालू महीने में ही बनता है। आगे तीन साल तक विवाह शुभ नहीं बनता। यह देख कर उसको बड़ी घबराहट हुई। ब्राह्मणी ने इस घबराहट का कारण पूछा, तो उसने बताया कि कन्या का विवाह इसी महीने में शुभ बनता है, आगे ३ साल तक नहीं बनता, और इस महीने में विवाह के लिये केवल एक दिन शुभ है—शुक्लपक्ष की पंचमी। यह सुन कर ब्राह्मणी भी बड़ी बेचैन हुई। परन्तु कुछ देर बाद सोच-समझ कर बोली—"अभी तो १५ दिन बाकी हैं। अगर ठीक तरह से कोशिश की जाय तो इतने दिनों में वर ढूँढ़ा जा सकता है, और इसी महीने विवाह हो सकता है। तीन साल तो हम नहीं रुक सकते। लड़की काफी बडी हो गई है।"

ब्राह्मण फिर चिन्ता में पड़ गया। उसने सोचा, 'पत्नी ठीक कहती है। तीन साल तक नहीं रुका जा सकता।' उसने नाई को बुलवाया और कन्या के लिये तुरन्त वर ढूँढने के लिये जाने को कहा। उसने नाई को स्पष्ट बता दिया कि लड़की का विवाह तीन साल तक नहीं बनता; इसलिये शीघ्र ही योग्य वर ढूँढ़ना है, और विवाह इसी महीने शुक्ल-पक्ष की पंचमी को करना है। 'जो आज्ञा' कह कर नाई वहाँ से चला गया और वर की खोज में निकल पड़ा।

नाई चलते-चलते एक गाँव में पहुँचा और वहाँ उसने एक सुगठित और सुयोग्य

ब्राह्मण-युवक मिल गया। नाई ने उसे योग्य वर समझ कर सम्बन्ध पक्का कर दिया और विवाह के लिये पचमी का दिन निश्चय करके लौट आया।

इधर नाई के घर से जाते ही ब्राह्मण के मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। वह सोचने लगा—'आखिर, नाई ही तो है। न मालूम मेरी सुशील और गुणवती कन्या के लिये कैसा वर देख आये। समय थोड़ा है, अगर गलती हो गई तो सुधारी भी नहीं जा सकेगी। साथ ही, विवाह-सम्बन्ध एक पवित्र सम्बन्ध है, वर-वधू का स्थायी संयोग है, और दो जीवनों का अन्त तक का साथ है। बिना सोचे-समझे चाहे जिसके साथ विवाह कर देना एक अबोध कन्या के जीवन के साथ खिलवाड़ करना है। मैंने बड़ी गलती की, जो नाई को वर ढूँढने के लिये भेज दिया। जिस कन्या को मैं इतना प्यार करता हूँ, क्या उसके लिये मैं कुछ भी त्याग नहीं कर सकता। नहीं, वर ढूँढने मैं खुद जाऊँगा। कन्या चाहे तीन वर्ष और क्वारी रहे पर जब तक मेरे मनपसन्द वर न मिल जायगा तब तक इसका विवाह न करूँगा।'

यह सोच कर ब्राह्मण उठा और अपनी पत्नी को अपना इरादा बता कर वर ढूँढने के लिये चल दिया।

एक गाँव में उसे ऐसा योग्य वर मिल गया जैसा कि वह चाहता था। उसने उसका सम्बन्ध पक्का कर दिया और विवाह की तिथि बता कर चला आया।

इधर ब्राह्मण के घर से जाते ही ब्राह्मणी को बड़ी बेचैनी हुई। वह सोचने लगी—'नाई तो निर्बुद्धि होता है। उसे क्या पता कि हमारा घर कितना प्रतिष्ठित है। मेरी लड़की तो गुलाब का फूल है। अँधेरे घर में भी उजाला कर देनेवाली है। अगर नाई कोई निर्धन घर या कुरूप वर देख आया, तो मेरी लड़की तो कुढ-कुढ़ कर ही मर जायगी। मेरा दिल भी उम्र भर जलता रहेगा। मेरे पति ने बहुत बुरा किया जो नाई को वर ढूँढने भेज दिया। अब उन्हें अपनी गलती महसूस हुई है, और अब खुद वर ढूँढने गए हैं। परन्तु इससे भी क्या? वे ही कौनसा मेरी पसन्द का वर देख कर आयेंगे। मैं जानती हूँ, वे अधिक से अधिक यह देखेंगे कि लड़का पढा-लिखा और तन्दुरुस्त हो, चाहे उसके घर में कुछ भी न हो। उन्हें क्या पता कि स्त्रियाँ क्या-क्या चाहती हैं। मैं तो ऐसा लड़का चाहती हूँ, जो सुन्दर और स्वस्थ हो, धनवान् हो, उदार और सच्चरित्र हो। यदि पढा-लिखा हुआ पर सुन्दर न हुआ तो दो कौड़ी का। समय बहुत थोड़ा है। जल्दी-जल्दी में गलती हो सकती है। इसलिये मैं स्वय वर ढूँढने जाऊँगी। मेरे पति ने मेरी सब बातें मानी हैं, तो क्या यह छोटी-सी बात न मानेंगे। मानेंगे क्यों नहीं, जबरदस्ती मनवाऊँगी। क्या लडकी पर मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है। नहीं, मैं न नाई की मानूँगी और न पतिदेव की। लड़की के जीवन भर का सवाल है।'

यह सोच कर ब्राह्मणी ने अपने लडके को अपने पास बुलाया, और उसे सब हाल बता कर कन्या के लिये वर ढूँढने चल दी।

वर की खोज में वह एक गाँव में पहुँची। वह जैसा वर चाहती थी, वैसा उसे मिल गया। उसका सम्बन्ध पक्का करके और विवाह की तिथि निश्चित करके वह अपने घर लौट आई।

इधर उसके घर से जाते ही, लड़की का भाई सोचने लगा—'नाई तो अपनी ड्यूटी पूरी कर देगा। उसे वर ढूँढ़ने के लिये कहा गया है, वह वर ढूँढ़ देगा। फिर चाहे वह कैसा ही हो। वर ढूँढ़ने के बाद उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता है। बाद में भुगतना तो हम ही को पड़ेगा। माता पिता के ऊपर कुछ जिम्मेवारी जरूर है, पर अधिक नहीं। वे तो अपने मन का वर ढूँढ़ेंगे। पिता जी यह देखेंगे कि लड़का पढ़ा-लिखा हो, माता जी यह देखेंगी कि लड़का सुन्दर हो, धनवान् हो। पर इतने से तो काम नहीं चलता। माता-पिता तो बहन का विवाह करके स्वर्ग सिधार जायेंगे, बहनोई साहब और उनके परिवारवालों से बाद में भुगतना तो मुझे पडेगा। मैं चाहता हूँ कि मेरी बहन के लिये जो वर देखा जाय, वह स्वभाव का अच्छा हो, मिलनसार हो और उसके परिवारवाले सभ्य और शिष्ट हों, जिससे मेरी बहन को ससुराल मे जाकर कोई दुःख न हो, और उसकी वजह से मुझे भी कोई दुःख न हो। लड़का पढ़ा-लिखा भी हुआ, सुन्दर भी हुआ और धनवान् भी हुआ, पर सभ्य और शिष्ट न हुआ तो घर मे सदा क्लेश रखेगा, और बहन का जीवन दूभर हो जायगा। इसलिये मैं अपना मनपसन्द वर ढूँढूँगा। माता-पिता नाराज हों तो भले हो जाएँ, उन्हें कितने दिन इस संसार मे रहना है?'



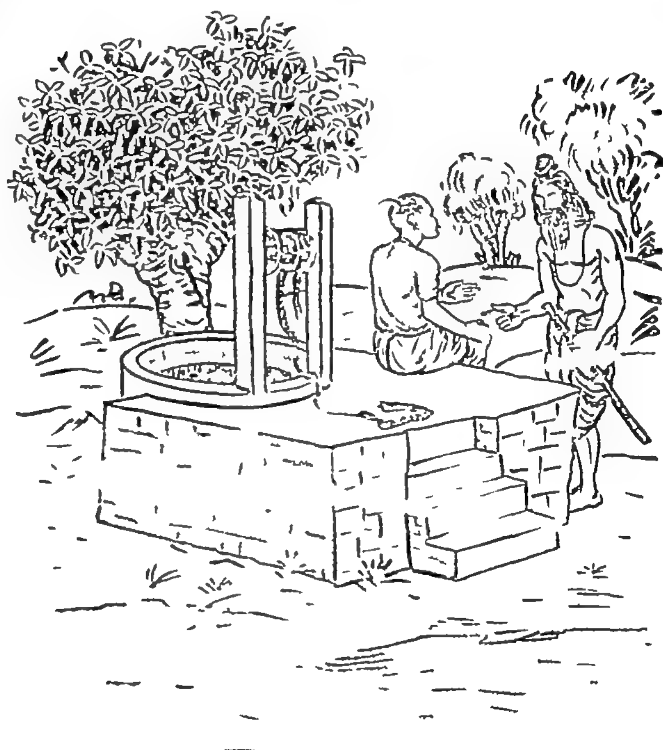
सन्यासी ने चिड़िया की ओर इशारा करते हुये ब्राह्मण से कहा—"इसे उठा लो।'

यह सोच कर वह उठा, घर नौकर के सुपुर्द किया और वर ढूँढ़ने चल दिया।

एक गाँव में उसे भी उसकी पसन्द का वर मिल गया, और वह उसका सम्बन्ध पक्का करके और विवाह की तिथि निश्चित करके घर लौट आया।

नाई, ब्राह्मण, ब्राह्मणी और लडका चारों एक ही दिन घर वापस पहुँचे। आपस

में बातचीत करने के बाद मालूम हुआ कि चारों चार गाँवों में चार वर तलाश कर आये और सबको विवाह की एक ही तिथि 'शुक्ल पचमी' बता आये हैं। यह बात प्रकट होने पर ब्राह्मण को बड़ी चिन्ता हुई और उसने तुरन्त नाई को आज्ञा दी कि वह तीन गाँवों मे जाकर सम्बन्ध रद्द कर आये। केवल वही सम्बन्ध पक्का समझा जाय, जिसे बाप ने स्वय पक्का किया था। नाई बडे पसोपेश में पड़ा। वह 'हाँ' करके 'न' करना ठीक नहीं समझता था। यदि नाई आज एक सम्बन्ध पक्का कर दे और कल उसे रद्द कर दे तो समाज में उसकी साख ही क्या रहेगी। इसलिये वह अपने पक्के किये हुए सम्बन्ध को रद्द करना नहीं चाहता था। वह उन तीन सम्बन्धों को रद्द करने गया जो ब्राह्मण, ब्राह्मणी और उनके लडके ने पक्के किये थे। उसने तीनों स्थानों पर जाकर ब्राह्मण का सन्देश सुना दिया। परन्तु चिढ़ानेवाला समझ कर किसी ने उसकी बात न मानी और विवाह की तैयारी करते रहे। उन्होंने सोचा—'सम्बन्ध को वही रद्द कर सकता है, जिसने पक्का किया है। यह कोई लड़की वाले का विरोधी मालूम पडता है।'



सन्यासी ने कहा—'आत्महत्या करने मे कोई लाभ नहीं, तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारी समस्या हल कर दूँगा।"

शुक्ल पक्ष की पचमी आई। ब्राह्मण ने विवाह की सब तैयारियाँ कर ली थीं। परन्तु जब शाम को चार बरात दरवाजे पर देखी तो घबरा गया। सोचने लगा—नाई ने मना करवा दिया था, फिर भी ये लोग कैसे आ गए? एक लड़की और चार वर! मेरा कैसा दुर्भाग्य है! अब मुझे डूब मरने के लिये भी जगह नहीं है। हे भगवान! मैंने ऐसे क्या पाप किये थे, जो मुझे यह दिन देखने को मिला? अब मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ?'

यह सोचते-सोचते ब्राह्मण बेचैन हो गया और लज्जा और बदनामी के कलंक मे

बचने के लिये आत्महत्या करना ही उसने सबसे अच्छा उपाय समझा। वह धीरे से उठा और गाँव के बाहर एक कुएँ में कूद कर प्राण देने के विचार से चल दिया। जब वह कुएँ पर पहुँचा तो अचानक एक संन्यासी उधर आ निकला। सन्यासी ने उससे पूछा—"तू इस निर्जन जंगल में इस कुएँ पर अकेला बैठा क्या कर रहा है?" ब्राह्मण ने संन्यासी से सारा हाल कहा। सन्यासी ने कहा—"आत्महत्या करने से कोई लाभ नहीं। तू मेरे साथ चल। मैं तेरी समस्या हल कर दूँगा।" ब्राह्मण संन्यासी के साथ हो लिया।

रास्ते में एक कुतिया मिली, जिसने अभी-अभी तीन पिलियों को जन्म दिया था। संन्यासी ने एक पिलिया की ओर इशारा करते हुए ब्राह्मण से कहा—"इसे उठा लो।" ब्राह्मण ने पिलिया को उठा कर झोली में डाल लिया। आगे चल कर दोनों क्या देखते हैं कि एक सुअरिया अभी-अभी ब्याई है और उसने एक बच्ची डाली है। संन्यासी ने इशारा किया कि इसे भी उठा लो। ब्राह्मण ने उसे भी उठा कर झोली में डाल लिया। जब और आगे



ब्राह्मण ने पहले एक वर को बुलाया

चले तो एक गधी मिली। वह भी अभी ब्याई थी और उसने एक मादा बच्चा जना था। संन्यासी के इशारा करने पर ब्राह्मण ने गधी के बच्चे को भी झोली में डाल लिया।

अब संन्यासी और ब्राह्मण घर पहुँचे। संन्यासी ने कहा—"इन तीनों बच्चों को एक कोठे में बन्द कर दो और अपनी लड़की को भी इसी कोठे में बन्द कर दो। जब तक मैं न कहूँ, तब तक कोठा न खोलना।" ब्राह्मण ने ऐसा ही किया और चारों को एक कोठे में बन्द कर दिया। इसके बाद संन्यासी ने कहा कि एक-एक करके चारों वरों को जनवासों से बुलाओ। ब्राह्मण ने पहले एक वर को बुलाया।

संन्यासी की आज्ञा से कोठे का ताला खोला गया। परन्तु सब लोग यह देख कर चकित रह गये कि अन्दर एक ही रूप-रंग और आयु की चार कन्यायें बैठी हुई हैं। उनमें से एक कन्या को बाहर निकाला गया और उसका विवाह विधिपूर्वक उपस्थित वर

के साथ कर दिया गया। इसी प्रकार बारी-बारी से शेष तीनों कन्याओं का विवाह भी शेष तीनों वरों के साथ कर दिया गया। ब्राह्मण ने चारों बरातों की अच्छी तरह खातिर की और सुबह होते ही चारों को विदा कर दिया। चारों वर खुश थे और चारों के मुख पर विजय की भावना झलक रही थी। उनमें से प्रत्येक यह समझ रहा था कि ब्राह्मण ने कन्या का विवाह मेरे ही साथ किया है और शेष तीनों वर निराश होकर जा रहे हैं। उनको यह भली-भाँति मालूम था कि कन्या एक ही है और बरातें गलती से चार आ गई हैं।

चारों लडकियों को ससुराल गये काफी समय हो गया। एक दिन ब्राह्मण के मन में आई कि जाकर देखूँ चारों लडकियाँ सुसराल मे कैसे रह रही हैं।

पहले वह उस लड़की के पास गया, जो कुतिया की बच्ची थी। समधी ने उसका अच्छी तरह सत्कार किया और कहा—"पंडित जी! हम आपके बडे आभारी हैं। आपने अन्य तीन वरों की उपेक्षा करके मेरे लड़के के साथ अपनी कन्या का विवाह किया। इसमे मैं अपना बड़ा गौरव अनुभव करता हूँ। आपकी कन्या भी बडी योग्य है। घर का सब काम काज कर लेती है। परन्तु उसमें कुछ दुर्गुण भी हैं। वह बिना बात सबसे लडती है। घर में सब चीजें मौजूद होते हुए भी पडौसिनों से मागे बिना नहीं मानती। सुबह होते ही जब तक दस घर नहीं घूम लेती तब तक उसे चैन नहीं पडता। हमने उससे बहुतेरा कहा है कि तू घर-घर फिरना छोड दे, परन्तु उसकी यह आदत नहीं जाती।" ब्राह्मण ने एक ठंडी साँस ली और अपने मन में कहा—"है तो कुतिया की ही जाई।"

इसके बाद वह अपनी उस लडकी के पास गया जो सुअरिया की बच्ची थी। यहाँ भी समधी ने उसका सत्कार किया और कहा—"श्रीमान् जी! अन्य तीन समधियों की उपेक्षा करके आपने हमें अपनी कन्या दी, इसके लिये हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं। आपकी कन्या भी योग्य है। परन्तु उसमें एक बडा दुर्गुण है। वह गन्दी बहुत रहती है। सुन्दर से सुन्दर वस्त्रों को दो ही दिन में खराब कर लेती है। खाने का ढंग भी उसे नहीं आता। चाँदी के थाल में अलग-अलग परोसे हुए व्यजनों को एक में मिला कर हाथ से सपोटती है। जब चाहे तब खाने बैठ जाती है। घर में कोई चीज रखी देखती है, तो उठा कर खाने लगती है। सड़क पर कोई खोमचेवाला आवाज लगाता है तो उसे बुला लेती है और उससे लेकर चाट-पकौड़ी खाती है। कहने का अभिप्राय यह है कि एक तो वह पेट की सुअरिया है, दूसरे गन्दी रहती है।" ब्राह्मण ने अपने मन में कहा—"आखिर है तो सुअरिया की ही जाई।"

इसके पश्चात् वह अपनी उस लडकी के पास गया जो गधी की बच्ची थी। यहाँ भी समधी ने उसी प्रकार उसकी खातिरदारी और प्रशंसा की जिस प्रकार अन्य दो समधियों ने की थी। समधी ने उसकी कन्या की भी प्रशंसा की और कहा—"आपकी कन्या बडी परिश्रमी और भोली-भाली है। बेचारी दिन भर काम में लगी रहती है। चाहे किसी काम में जुटा दो, कभी 'न' नहीं करती। पर यह बात जरूर है कि काम-धीरे-धीरे करती है। जितना ही जल्दी का काम हो, एक घंटे के काम में चार घंटे लगा देगी। यदि जल्दी करने को कहो तो काम खराब कर देगी। कभी-कभी काम करते समय पडोसिनों से

बातें करने लगती हैं, और काम करना भूल जाती है। आलसिन इतनी है कि भोजन पकाते-पकाते सो जाती है। डाँट-फटकार का उस पर कोई असर ही नहीं। बुद्धि तो परमात्मा ने दी ही नहीं। किसी बात को बार-बार समझाओ, तब भी नहीं समझती। बच्चे उसे कभी-कभी 'गधी की बच्ची' कह देते हैं।" ब्राह्मण ने मन में कहा—"कौन मेरी लड़की है? है तो गधी की ही जाई।"

अन्त में वह अपनी कन्या के पास गया। यहाँ भी उसका स्वागत-सत्कार हुआ। समधी ने उसकी और उसकी कन्या की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—"बन्धुवर! आपकी कन्या बड़ी सुशील और सुलक्षणी है। जिस दिन से हमारे घर आई है हमारे घर का दरिद्र दूर हो गया। वह प्रातःकाल सबसे पहले उठती है। सारे घर की सफ़ाई करती है। नित्य स्नान करके पूजा-पाठ करती है। खाली समय में रामायण और भागवत पढ़ती है। खेल-तमाशे उसे अच्छे नहीं लगते। मेला देखने आज तक नहीं गई। सबको बड़े प्रेम से भोजन खिलाती है। सास-ससुर, पति और अन्य गुरुजनों की सेवा करके प्रसन्न होती है। उसका व्यवहार और बोलचाल का ढंग बहुत अच्छा है। घर के और बाहर के सभी उससे प्रसन्न रहते हैं। घर की सब चीजों की सार-सँभाल रखती है। कोई फिजूल खर्च नहीं होने देती। जिस चीज की जरूरत होती है, उसी को मँगाती है। बेकार चीजों को जमा करके नहीं रखती। अपने लिये आज तक कभी एक साड़ी लाने को भी नहीं कहा। जब हम खरीद कर लाते हैं तो कहती है—'अभी इसकी क्या जरूरत थी।' आभूषण तो पहनती ही नहीं। वह अपने सुहाग को ही सबसे बड़ा आभूषण समझती है। मैं उसके गुणों की कहाँ तक प्रशंसा करूँ। वह तो साक्षात देवी है।" ब्राह्मण ने मन में कहा—'आखिर है तो स्त्री की ही जाई।'

इसके बाद वह प्रसन्न होकर घर लौट आया।




घुघुवा एक छलांग में राजा की गोद में जाकर बैठ गया।

भारत की लोककथा

कलावती

मन्मथनाथ गुप्त

एक राजा था। उसके सात रानियां थीं। राजा का राज्य काफी बड़ा था। फीलखाने में हाथी, घुड़साल में घोड़े, भण्डार में मोती और रत्न खचाखच भरे थे। कहीं किसी बात की कमी नहीं थी। कमी थी तो बस एक बात की। वह यह कि राजा के सात रानियां होते हुए भी कोई लड़का नहीं था।

एक दिन रानियां नहा रही थीं कि तालाब के किनारे एक बाबा जी आ गये, और उन्होंने बड़ी रानी के हाथ में एक जड़ी देते हुए कहा—"इसे सिल पर पीस कर सातों खा जाना। सब के एक-एक कुमार होगा।"

रानियां बड़ी खुश हुईं। रानियों ने निश्चय किया कि आज सारे काम हम खुद करें, और फिर जड़ी खायें। इसलिये कोई खाना पकाने, कोई तरकारी काटने, कोई मसाला पीसने में जुट गईं। बाबा जी की दी हुई जड़ी बड़ी रानी के पास थी। उसने पांचवीं रानी को जड़ी देते हुए कहा—"इसे बांट लो, और हम लोग थोड़ी-थोड़ी खायें।" पांचवीं ने कुछ स्वयं खा ली, फिर बड़ी रानी को दी, तो उसने खा ली। इस प्रकार से खाते खाते कुछ नहीं बचा, और छोटी रानी जो बाहर के हिस्से में कहीं मछली काट रही थी, वह जड़ी खाने से रह गई। जब छोटी रानी ने यह माजरा देखा, तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। तब रानियां एक दूसरे को दोष देने लगीं। अन्त में एक रानी ने कहा कि क्यों

न सिल बट्टा धोकर इसे पिला दिया जाय, एक रानी तो कटोरी धोकर पी ही चुकी है, होना होगा, तो इसीसे इसके भी कुमार होगा।

क्या करती, छोटी रानी ने सिल की धोवन ही पी। दस महीने दस दिन पर पांच रानियों के तो कुमार हुये। जिसने कटोरी धोकर पी थी, उसके पेट से एक उल्लू पैदा हुआ और छोटी रानी के पेट से एक बन्दर उत्पन्न हुआ। पाच रानियों के दरवाजो पर तो ढोल वजने लगे, और दोनों रानियों के घरों में रोना पीटना मच गया। राजा ने पांच रानियों का तो बड़ा आदर किया, और बाकी दो रानियों को रनिवास से निकाल वाहर किया। छठी रानी चिड़िया खाने मे नौकरानी हो गई, और छोटी रानी गोवर वटोरती हुई मारी-मारी फिरने लगी।

धीरे-धीरे कुमार बड़े हुये, और उल्लू और वन्दर भी वडे हुये। पांच कुमारों के नाम इस प्रकार से हुये—हीरा कुमार, माणिक कुमार, मोती कुमार, पुखराज कुमार और कांचन कुमार। उल्लू का नाम पड़ा भुतुवा, और वन्दर का नाम पड़ा वुधुवा।

पांच कुमार पांच पक्षिराज घोड़ों पर फिरा करते थे। उनके साथ न मालूम कितने सिपाही और दूसरे लोग अर्दली में रहते थे। भुतुवा और वुधुवा एक मौलश्री के पेड़ पर रहते थे।



पाच कुमार पांच पक्षिराज घोड़ों पर फिरा करते थे। भुतुवा और बुधुवा एक मौलश्री के पेड़ पर रहते थे।

पांचों राजकुमार कहीं इसे मारते थे, तो कहीं उसे नोचते थे, लोग उनसे परेशान थे। वुधुवा गोवर वटोरने मे माँ का साथ देता था, और भुतुवा चिड़ियाखाने में चिड़ियों को चुग्गा खिलाता था।

एक दिन सव राजकुमार टहलने निकले, तो उन्होंने पेड़ पर भुतुवा और वुधुवा को देखा। वस उन्होंने हुक्म दे दिया कि इन्हे पकड़ लिया जाय। थोड़ी ही देर में दोनों जाल में फांस लिये गये, और उन्हें पिंजड़ों में वन्द कर राजमहल में लाया गया। भुतुवा और वुधुवा ने देखा कि यह तो वहुत वढ़िया जगह है, तो वे कुमारों से वोले—"जो हम लोगों को ले आये, तो हमारी माताओं को भी ले आओ।" कुमारों ने पूछा—"तुम्हारी माताएं कहां हैं?"

इस पर उन दोनों ने अपनी माताओं का हाल वताया। तव कुमार वोले—"भला मनुष्य से भी उल्लू और वन्दर पैदा होते हैं?"—कह कर वे हंसने लगे।

पर एक सिपाही ने उन रानियों का वृत्तान्त वताया, और कहा कि ये उन्हीं रानियों के वेटे हैं। यह सुन कर कुमारों ने हुक्म दे दिया कि इन दोनों मनहूसों को फौरन से पेश्तर राजमहल से निकाल वाहर किया जाय। ऐसा ही हुआ।

सोने की खाट में वैठ कर, चांदी की मचिया पर पैर रख कर, पांच रानियां वाल

संवार रही थीं। एक दासी ने आकर खबर दी कि नदी के किनारे एक तोतापंखी जहाज लगा है, उसमें चांदी के डांड और हीरे की पतवार है। उस जहाज में बादलों के रंग के बालवाली कन्या सोने के तोते से बात कर रही है। फौरन सब रानियां दौड़ कर उस कन्या को देखने के लिये चलीं।

उस समय तक तोतापंखी पाल उठा कर रवाना हो चुका था। जहाज से बादलों के रंग के बालवाली कन्या ने कहा—"मोती का फूल, मोती का फल जहां, वह देश मेरा, वहां अपने लड़कों को भेजना।"

जब तक जहाज और दूर निकल गया। उसमें से फिर उस कन्या ने कहा—"जो लड़का मोती का फूल लाने में समर्थ होगा, उसकी बांदी होकर मैं आऊंगी।"

तोतापंखी तो चला गया, और इधर रानियों ने कुमारों को खबर दी। कुमार पक्षिराजों पर चढ़ कर आये। राजा ने भी सारी बातें सुन कर मोरपंखी तैयार करने का हुक्म दिया। उपाय सोचने के लिये विशेष दरबार बुलाया गया। भुतुवा और बुधुवा भी वहां पहुँचे। बुधुवा एक छलांग में राजा की गोद में जाकर बैठ गया, और भुतुवा राजा के कंधे पर जा बैठा। दरबार में कोहराम मच गया, और सब लोग दौड़ पड़े। बुधुवा और भुतुवा ने राजा को पिता जी कह कर पुकारा, इस पर राजा की आंखों में आंसू आ गये, और वे उन्हें लेकर चले गये।

पांच झंडियां उड़ा कर पांच मोरपंखी घाट में आ लगे। रानियां अपने कुमारों को ठाट-बाट से चढ़ाने के लिये आयीं। उधर राजा भी बुधुवा और भुतुवा को लेकर आये। इस पर बुधुवा और भुतुवा ने कहा कि उन्हें भी मोरपंखी चाहिये। रानियों ने जो यह बात सुनी, तो उनके एक-एक तमाचा जमाया, और अलग कर दिया। राजा टुकुर-टुकुर देखते रह गये, कुछ बोल न सके। रानियों के सामने उनका मुँह नहीं खुला।

राजा और रानियां तो चली गईं, तब बुधुवा ने भुतुवा से पूछा—"भाई मेरे, अब क्या हो?"

भुतुवा बोला—"कुछ समझ में नहीं आता।"

बुधुवा ने कहा—"चलो बढ़ई के यहां चलें।"

उधर भुतुवा और बुधुवा की मातायें रो-रो कर दिन काटती थीं। उन्होंने सुना कि पांचों कुमार मोरपंखी लेकर रवाना हुये। इस पर वे और भी रोने लगीं। फिर उन लोगों ने जाकर नदी में सुपारी के पेड़ की दो डोंगियां छोड़ दीं। उनकी इच्छा थी कि उनके लड़के भी मोरपंखी पर जायं। भुतुवा और बुधुवा नाव बनवाने के लिये बढ़ई के यहां जा रहे थे कि रास्ते में उन्होंने इन डोंगियों को देखा। उन्होंने कहा—"यह तो बड़ा अच्छा हुआ, चलो इन्हीं पर चलें।"

राजकुमारों के मोरपंखी तीन बुढ़ियों के राज्य में पहुँचे। फौरन ही तीन बूढ़े [illegible] ने मोरपंखियों को घेर लिया, और कुमारों तथा उनके सिपाहियों, मल्लाहों आदि को बंदी बना कर बुढ़ियों के पास पहुंचाया। बुढ़ियों ने बिना पानी के उन्हें गटक लिया, और [illegible]। [illegible] कुमार आपस में बात करने लगे कि यह तो अच्छा हुआ कि [illegible] के पेट में बन्द हो गये। अब न तो देश जाना होगा, [illegible]।

वे बात कर ही रहे थे कि बाहर से आवाज गई—"भैया, भैया।" भीतर से आवाज आयी—"हम पेट में हैं।"

बाहर से आवाज गई—"कोई बात नहीं। मैं बुढ़िया की नाक के जरिये से पूंछ डालता हूँ। तुम लोग उसे पकड़ कर चले आओ।"

कुमारों ने ऐसा ही किया, और बाहर आकर देखा कि बुधुवा और भुतुवा हैं। बन्दर और उल्लू ने कहा—"बोलो मत, फौरन तलवार से बुढ़ियों के गले काट डालो।"

ऐसा ही हुआ। फिर सब लोग जाकर मोरपंखियो पर सवार हो गये, और बुधुवा भुतुवा को किसी ने पूछा भी नहीं।

मोरपंखी सारी रात चल कर सवेरे लाल नदी के पानी मे दाखिल हुए। लाल नदी का कोई किनारा नहीं था, इसलिये मल्लाह रास्ता भूल गये। मोरपंखी समुद्र मे जा गिरे। मल्लाह हाय-हाय करने लगे। सात दिन सात रात तक मोरपंखी समुद्र मे तैरते रहे। अब पांचो मोरपंखी डूबने को हुये। कुमार अब बुधुवा और भुतुवा को याद करने लगे। याद करते ही वे आ गये, और अपनी सुपारी की डोंगियों को मोरपंखियों से बाध कर कुमारों के पास आये। और मल्लाहो से बोले—"उत्तर की तरफ चलो।"

थोड़ी ही देर में मोरपंखी किसी ऐसी नदी मे पहुँचे, जिसके दोनों किनारों पर तरह तरह के फूल और फल के पेड़ लगे हुये थे। कई दिन के भूखे-प्यासे कुमार और मल्लाह खा पीकर तृप्त हुये। जब वे तृप्त हो गये, तो कुमार बोले—बन्दर और उल्लू को रखने से सगुन खराब होगा, इन्हे पानी मे फेंक दो। इनकी डोंगियों को भी खोल दो।"

थोड़ी दूर गये होंगे कि एक जगह पर बिना किसी कारण के सब मोरपंखी डूब गये। किसी का पता ही नहीं रहा। थोड़ी देर में बुधुवा और भुतुवा की डोंगियां आयीं, तो बुधुवा बोला—"मेरा मन कुछ कह रहा है कि यहां हमारे भाई मुसीबत मे पड गये हैं। डुबकी लगा कर देखा जाय।"

भुतुवा बोला—"मरने दो मुझे खुशी है।"

बुधुवा बोला—"ऐसी बात न करो भाई। मैं कमर में रस्सी बाध कर उतरता हूँ, जब रस्सी मे खिचाव आवे तभी मुझे उठाना"—कह कर बुधुवा ने डुबकी लगाई, और भुतुवा बैठा रहा।

बुधुवा ने पाताल मे पहुंच कर देखा कि वहां एक लम्बी सुरंग है। बुधुवा सुरंग मे दाखिल हुआ। वहां एक राजमहल मिला। बहुत ही सुन्दर था। पर वहां न तो कोई आदमी था न आदमजाद। वहा एक सौ साल की बुढ़िया बैठ कर कथड़ी सी रही थी। उसने बुधुवा को देखते ही कथड़ी फेंक कर मारी। फौरन ही हजारों सिपाही आकर बुधुवा को बांध कर राजमहल मे ले गये। वहां कुमारों ने उसका स्वागत किया। बुधुवा ने कहा—"अच्छा।"

अगले दिन वह मरा दिखाई पड़ा, तो दासियो ने उसे उठा कर फेंक दिया। बुधुवा मरा तो था नहीं, यों ही मक्कर मारे पड़ा था। इधर-उधर ताक कर बुधुवा ने देखा कि राजमहल के तिमंजिले पर बादलों के रंग की बाल वाली राजकुमारी सोने के तोते के साथ बात कर रही है। बुधुवा पेड़ों पर होता हुआ छत पर पहुंचा। उस समय राजकुमारी सोने

के तोते से कह रही थी—"सोने के तोते, चादी के डांड और हीरे की पतवार बेकार में गई। कोई आया ही नहीं।"

राजकुमारी के बालों में मोती का फूल था। बुधुवा ने धीरे से उस फूल को ले लिया। तोते ने राजकुमारी से कहा—"देखो तो तुम्हारा फूल किधर गया ?"

राजकुमारी ने बालों में हाथ डाल कर देखा कि फूल नहीं है। तब तोता बोला—"तुम्हारा दूल्हा आ गया।"

कलावती ने पीछे लौट कर देखा कि बन्दर है, तो वह दु ख के मारे पछाड़ खाकर गिर पड़ी, पर राजकुमारी क्या करती, उसने जो शर्तें रखी थीं, वे पूरी हो गईं, इसलिये बुधुवा को पति तो बनाना था ही। होश में आकर उसने बन्दर के गले में माला डाल दी। तब बुधुवा ने हंस कर पूछा—"राजकुमारी तुम किस की हो ?"

राजकुमारी बोली—"पहले मैं माँ बाप की थी, फिर मैं अपनी हुई, अब मैं तुम्हारी हूँ।"

बुधुवा बोला—"अगर ऐसा ही है, तो तुम मेरे भाइयों को छोड़ दो, और मेरे साथ घर चलो। वहाँ मेरी माएँ तुम्हारा इन्तजार करती होंगी।"

राजकुमारी बोली—"तुम मुझे यों नहीं ले जा पाओगे, मैं इस डिबिया में बैठती हूँ, तुम मुझे इसी डिबिया में बैठा कर ले चलो।"

बुधुवा ने ऐसा ही किया। इतने में तोते ने नगाड़े में चोट की, और फौरन बाजार लग गया। राजकुमारी वाली डिबिया दूकानदारों की डिबियों में मिल गई।

बुधुवा ने देखा कि यह तो अच्छा तमाशा है, उसने नगाडे में चोट दी। दायें चोट देता, तो बाजार बसता, और बायें चोट देता, तो बाजार उठ जाता। बस बुधुवा ने बन्दर स्वभाव के कारण एक बार दायें और फिर बायें चोट करना शुरू किया। एक मिनट में कई कई बार बाजार बसा और उजडा। दूकानदार माल रखते ढोते थक गये। तब उन्होंने बुधुवा को उसकी डिबिया लौटायी, और हाथ जोड़ लिये।

बुधुवा ने डिबिया ले ली, और साथ ही साथ नगाड़ा भी ले लिया। राजकुमारी ने निकल कर कहा कि भूख लगी है, पेड़ से फल ले आओ। बुधुवा फल लेने पहुँचा, तो फल तो बहुत सुन्दर थे, पर पेड़ के नीचे एक अजगर फुफकार रहा था। बुधुवा ने तब एक सूत निकाला, और अपनी कमर से उस सूत को बांध कर पेड़ के कई फेरे लगाये, फिर सूत को कस दिया, तो उसमें लगे हुये मझे के कारण अजगर के कई टुकड़े हो गये। इसके बाद बुधुवा फल ले आया। फिर बुधुवा ने अपने पाचों भाइयों को मय उनके लश्कर और सामान के एक साथ बाध लिया, बुढ़िया की कथड़ी छीन ली, और फिर पीठ की रस्सी को खींचा। बस भुतुवा ने ऊपर से खींच लिया। फौरन सब लोग ऊपर आ गये, और मल्लाहों ने मोरपखियों को चालू किया।

बुधुवा जाकर मोरपखी की छत पर बैठा, और उल्लू मस्तूल पर बैठा। छत पर बुधुवा डिबिया के अन्दर किसी से बात करता था। पतवार वाले मल्लाह ने पाचों राजकुमारों को यह खबर दी। राजकुमारों ने कहा—"अच्छा यह बात है ?"

जब रात गहरी हुई और सब लोग सो गये, तो राजकुमारों ने जाकर बुधुवा की डिबिया चुरा ली, और उसे नगाड़ा और कथड़ी समेत पानी मे ढकेल दिया। भुतुवा

मस्तूल पर था, उसे एक तीर मार कर पानी में डाल दिया। फिर डिबिया से राजकुमारी को निकाल कर उससे राजकुमारों ने पूछा—"अब बताओ कि तुम किसकी हो ?"

राजकुमारी बोली—"नगाड़ा जिसका, मैं उसकी।"

राजकुमारों ने उसे मोरपंखी की एक कोठरी में कैद कर लिया। मोरपंखी आकर घाट पर लग गये। राजा आये, रानियां आयीं, सारी प्रजा आयी, लोगों को मालूम हुआ कि बादलों के रंग के बालवाली राजकुमारी को लाया गया है। रानियों ने यथारीति धान और दूध से आशीर्वाद करके कलावती राजकन्या को वरण किया। रानियों ने पूछा—"राजकुमारी तुम किसकी हो ?"

राजकुमारी बोली—"नगाड़ा जिसका, मैं उसकी।" एक एक करके रानियों में सब राजकुमारों का नाम लिया, और पूछा, "तुम फलाने की हो ?" इस पर उसने पांचों बार ना में उत्तर दिया। रानियों ने कहा—"फिर हम लोग तुम्हें काट डालेंगी।"

राजकुमारी बोली—"एक महीने तक मेरा व्रत है, यह खतम हो जाय, तो फिर चाहे जो कुछ करना।"

भुतुवा और बुधुवा की मायें एक दिन दुःख के मारे नदी में डूबने जा रही थीं कि इतने में भुतुवा और बुधुवा माँ माँ करते हुये आ गये। अगले दिन उन की झोंपड़ियों के पास नगाड़े की बदौलत बड़ा भारी बाजार लगा, और सारे पेड़ों में एक से एक बढ़िया फल लग गये। फिर देखा गया कि हजारों सिपाही पहरे पर हैं। राजा के पास खबर गई। उधर कलावती ने भी कहा कि मेरा व्रत पूरा हो गया। अब मुझे मारना हो मारिये, काटना हो काटिये। राजा की आंखें खुल गईं, और उन्होंने हुक्म दिया कि गाजे बाजे के साथ छठी और छोटी रानी को राजमहल में लाया जाय। पांचों रानियों ने सुन कर दरवाजे बन्द कर दिये। कलावती ने उनका स्वागत किया।

अगले दिन बड़ी धूमधाम से बुधुवा के साथ उस राजकुमारी की शादी हुई, और भुतुवा के लिए भी हीरावती राजकुमारी मिल गई। न तो पांचों रानियों ने दरवाजे खोले, और न पांचों राजकुमारों ने दरवाजे खोले। राजा ने इनके दरवाजों को बाहर से कांटे और मिट्टी लगवा कर बन्द कर दिये।

एक दिन रात को बादलों के रंग के बालवाली राजकुमारी और हीरावती सो रही थीं, तो उन्होंने जग कर देखा कि उनके पलंगों पर बन्दर और उल्लू की खाल रखी हुई है। दोनों राजकुमारियों ने बाहर झांका, तो दो बहुत सुन्दर राजकुमार राजमहल पर पहरा देते हुये दिखायी पड़े। तब दोनों ने युक्ति करके खालों को जला डाला। खालों की बदबू से दोनों राजकुमार भाग आये, और कहा—"तुम लोगों ने यह क्या किया ?" पर राजकुमारियों ने कहा—"हमने अच्छा किया।"

राजा बहुत सुखी हुये। बुधुवा का नाम बुद्धकुमार और भुतुवा का नाम रूपकुमार पड़ा और सब लोग सुख से रहने लगे।



सौराष्ट्र की लोककथा



काठ का घोड़ा

शचीरानी गुर्टू

घोड़ा बड़े ज़ोर से ऊपर आकाश की ओर उड़ा, और साथ ही राजकुमार को भी ले गया

पाटन नगर में कपूरसिंह नाम का एक धर्मात्मा राजा राज्य करता था। विवाह के कई वर्ष बीत जाने पर भी उसके कोई पुत्र न हुआ था, इसलिए ब्राह्मणों और पंडितों के कहने पर उसने भगवान् शिव की आराधना प्रारम्भ की। कुछ दिन बाद शिवजी की कृपा से उसके यहाँ एक बहुत सुन्दर बालक ने जन्म लिया। सातवें वर्ष राजकुमार को एक पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया। वहाँ एक बढ़ई के लड़के से उसकी बहुत गहरी मित्रता हो गई। उन दोनों में इतना अधिक प्रेम बढ़ गया कि राजा और दरबारियों को बड़ी चिन्ता हुई, और वे उन्हें एक दूसरे से अलग करने का उपाय सोचने लगे। किन्तु राजकुमार किसी की बात भी नहीं सुनता था। उसने सबसे कह रखा था कि यदि कोई मेरे मित्र का अपमान करेगा और उसे नाराज़ करेगा तो मैं अपने प्राण त्याग दूंगा। आखिर बढ़ई के लड़के ने ही अपनी बुद्धिमानी से राजकुमार से अलग होने की एक तरकीब सोची। वह उसकी आज्ञा लेकर बढ़ई का काम सीखने के लिए किसी दूर नगर में चला गया। राजकुमार को इससे दुःख तो बहुत हुआ, लेकिन उसने अपने मित्र की भलाई का ख्याल करके उसे जाने की आज्ञा दे दी। जाते हुए उसने बढ़ई के लड़के से यह प्रतिज्ञा करा ली कि वह लौटते हुए उसके लिए कोई आश्चर्यजनक वस्तु लेकर लौटे।

बढ़ई का लड़का किसी अच्छे गुरु की खोज में इधर-उधर भटकता रहा। दूर बहुत दूर, नदी-नाले पार करके, कई गाँवों, बस्तियों और शहरों को लाघ कर वह एक नगर में पहुँचा, जहाँ एक बहुत बड़े शिल्पी से उसकी भेंट हुई। शिल्पी ने बहुत प्रेम से बढ़ई के लड़के को अपने पास रक्खा, और काम सिखाने लगा। आठ वर्ष तक लगातार मेहनत करने के बाद वह एक निपुण कारीगर हो गया। शिल्पी ने एक दिन उससे कहा, "अब तुम अपने घर जाकर धन और प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हो।"

बढ़ई के लड़के ने उत्तर दिया—"मैं अपने नगर में तब तक नहीं घुस सकता, जब तक कि अपने प्यारे मित्र राजकुमार के लिए कोई आश्चर्यजनक चीज़ न ले जाऊँ।"

शिल्पी उसे तुरन्त गोदाम में ले गया, और उसने उसे एक खूबसूरत, काठ का उड़ने वाला घोड़ा दिया, जो घुमावदार पेंचों की सहायता से आकाश में उड़ता था। शिल्पी ने घोड़े को उड़ाने और रोकने की तरकीब उसे सिखा दी। घोड़ा पाकर बढ़ई का लड़का बड़ा खुश हुआ, और वह कृतज्ञ-हृदय से अपने नगर को लौटा, जहाँ उसका खूब धूमधाम से स्वागत किया गया।

युवक बढ़ई ने वह घोड़ा अपने मित्र राजकुमार को दिखलाया। दूसरे दिन सुबह वे दोनों घोड़े की परीक्षा के लिए एक बाग में गए। राजकुमार घोड़े की पीठ पर सवार हो गया और उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने लगा। न जाने कब और कैसे उसकी उंगली असली पेंच को छू गई। घोड़ा बड़े ज़ोर से ऊपर आकाश की ओर उड़ा, और साथ ही राजकुमार को भी ले गया। बढ़ई का लड़का भौंचक्का सा मुँह बनाए आकाश की ओर ताकता खड़ा रह गया।

कुछ देर बाद राजकुमार की खोज के लिए चारों तरफ दौड़-धूप होने लगी। बढ़ई के लड़के ने सारी घटना कह सुनाई, लेकिन किसी को विश्वास नहीं हुआ, और सन्देह में उसे पकड़ कर जेल में डाल दिया गया।

इधर आकाश में उड़ते हुए राजकुमार ने हर तरह से कोशिश की कि किसी प्रकार घोड़े की तेज़ चाल कम हो जाए, लेकिन उसे कोई सफलता नहीं मिली। अन्त में बहुत देर बाद अचानक उसका हाथ ऐसे पुर्जे पर पड़ गया, जिससे कि उड़ता हुआ घोड़ा रुक गया, और कनकपुर में जाकर टिका। पृथ्वी पर उतर कर राजकुमार को पास ही एक छोटा-सा सुन्दर बगीचा दिखाई पड़ा। वह उसी में घुस गया, और पेड़ की शीतल छाया में पड़ कर सो गया। बग़ीचे में राजा की मालिन रहती थी। उसने सोते हुए राजकुमार को जगाया और उसकी दुःख भरी कहानी सुन कर पुत्र की भांति उसे अपने पास रख लिया। वह वहा अत्यन्त सुखपूर्वक रहने लगा। मालिन रोज़ कनकपुर की राजकुमारी के लिए सुगन्धित फूल, माला, गुलदस्ते आदि सजा कर ले जाया करती थी। एक दिन स्वयं राजकुमार ने राज-



बढ़ई का लड़का भौंचक्का-सा मुँह बनाए आकाश की ओर ताकता खड़ा रह गया

कुमारी के लिए एक बहुत सुन्दर गजरा गूथा और उसमें अपने हाथ की अगूठी छिपा कर रख दी। राजकुमारी गजरा और अगूठी पाकर बड़ी खुश हुई। वह अंगूठीवाले राजकुमार को देखने के लिए लालायित हो उठी और उसने छिपा कर उसे अपने महलों में बुलाया। राजकुमार काठ के घोड़े पर चढ़ कर आकाश-मार्ग से महल में दाखिल हुआ। वहाँ दोनों ने चुपचाप, बिना किसी को बताए, गुप्त रीति से अपना विवाह आपस में कर लिया।

बहुत दिनों तक महल में रहते-रहते राजकुमार का मन भर गया, इसलिए एक दिन चुपचाप वह राजकुमारी के साथ घोड़े पर बैठ कर आकाश में उड़ चला। घोड़ा एक घने, सुनसान जगल में आकर रुका। राजकुमारी बहुत थक गई थी, उसे जोरों की प्यास भी लगी थी, आस-पास पानी मिलना मुश्किल था, अतः राजकुमार घोड़े पर चढ़ कर उसके लिए पानी ढूंढ़ने चला गया, और वह वहाँ अकेली रह गई। जब राजकुमार घोड़े पर चढ़ा हुआ बड़ी तेजी से उड़ा आ रहा था, तो अचानक उसका घोड़ा पहाड की चोटी से टकरा कर एक विशाल नदी में जा गिरा। इधर राजकुमारी प्यास से छटपटा कर अचेत सी हो रही थी, तभी उसके एक सुन्दर पुत्र ने जन्म लिया। वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। नवजात बालक को एक भेड़िया उठा कर ले गया।

नदी में गिरने पर राजकुमार को एक बहुत बडी मछली ने निगल लिया, लेकिन तत्काल वह मछली एक मछवाहे के जाल में फस गई, और इस प्रकार मछली को चीरने पर राजकुमार के प्राणों की रक्षा हो गई। राजकुमार की सुन्दरता और बुद्धिमानी से मछवाहा इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने अपनी नौका, मकान, मछली का व्यापार आदि सब उसके सुपुर्द कर दिये। राजकुमार शीघ्र ही एक चतुर व्यापारी हो गया।

इधर वर्षा की हल्की फुहार से राजकुमारी की बेहोशी टूटी और जब उसे यह ज्ञान हुआ कि वह अपना बच्चा और पति दोनों गवा बैठी, तो वह दुःख से पागल सी हो गई। रोती, कलपती, भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह इधर-उधर भटकती रही। अन्त में, वह कोकिलपुर पहुँची, जहाँ कि एक बुढ़िया जादूगरनी ने उसे अपने आश्रय में रख लिया। बुढ़िया बहुत अमीर थी और उसने एक सरोवर के बीच अपना महल बनवा रक्खा था। राजकुमारी बहुत सुखपूर्वक उसके पास रहने लगी और उसके मरने के बाद उसके धन और महल की मालकिन हो गई। वह फिर पहले की तरह शान से रहने लगी।

राजकुमारी का नया पैदा हुआ बालक, जिसे कि भेड़िया उठा कर ले गया था, एक शिकारी राजा के हाथ पड़ गया। उसके कोई पुत्र न था। वह ऐसा सुन्दर बालक पाकर फूला न समाया और उसने अपनी रानी को जाकर उसे सौंप दिया। रानी अपने पुत्र की तरह उसका पालन-पोषण करने लगी, और राजसी ठाठ-बाट में बालक बड़ा होने लगा। बूढे राजा के मरने के बाद रानी ने उसे अपने पति के सिंहासन पर बैठा दिया, एक दिन राजा शिकार के लिए गया। कोकिलपुर में सरोवर के महल से झाकती हुई उसे सुन्दरी रानी की थोड़ी सी झलक मिली। उसने सोचा, इस सुन्दरी को राज दरबार में बुलवाया जाये। उसने हाजिर होने का हुक्म भेजा किन्तु रानी ने उसे अस्वीकार कर दिया। राजकुमार को इस पर बडा क्रोध आया, और उसने जबर्दस्ती उसे पकड़वा मगाया। जैसे ही आसू बहाती हुई रानी राज्य की सीमा में घुसी, वैसे ही भयकर असगुन होने लगे और

अपमान करोगे तो पृथ्वी पाताल में धस जाएगा।" यह सुन कर राजकुमार का दिल दहल गया, मुँह फीका पड़ गया, और वह लज्जा और शर्म से जमीन में गड़ सा गया। वह दौड़ कर राज माता के पास गया, और अपने असली माता-पिता का हाल जानने का आग्रह करने लगा। राज माता ने कहा, 'प्यारे बेटा! तू ईश्वर की ओर से हमारे पास आया था। महाराज एक बार जब शिकार खेलने गए थे तो तू जंगल में पड़ा मिला था। तभी से तू मेरा प्यारा बेटा है।"

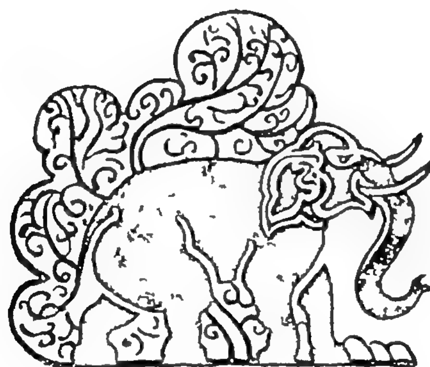
यह सुन कर युवक राजा उस नई रानी के पास गया, और उससे पिछले जीवन की सारी बातें पूछीं। उसने अपनी दुःखभरी कहानी राजकुमार को कह सुनाई। उसे अब पूर्ण विश्वास हो गया कि यही मेरी असली माँ है। वह उसके चरणों पर गिर कर क्षमा मांगने लगा। रानी ने भी अपने पुत्र को हृदय से लगा लिया। अब राजकुमार अपने खोए हुए पिता को खोज निकालने की कोशिश में लगा।

इस घटना के कुछ दिन बाद एक धनिक व्यापारी राज्य की सीमा में उतरा। उसके पास अनेक कीमती जवाहरात और हीरे थे। वह दरबार में भी बुलाया गया। व्यापारी का मुँह राजकुमार के मुँह से इतना अधिक मिल रहा था कि लोग आश्चर्य-चकित हो एक दूसरे की ओर ताक रहे थे। राजकुमार को भी कुछ सन्देह होने लगा। उसने व्यापारी से पूछा, "आप इतने अमीर कैसे हुए?"



रानी रोती हुई [illegible] के चरणों पर गिर पड़ी। [illegible]

व्यापारी की आखों में आंसू आ गए और उसने अपने विगत जीवन की कहानी कह सुनाई। उसने कहा कि "मैं अपनी प्यारी पत्नी के खो जाने से बड़ा दुखी हूँ।" सारी कहानी सुनने के बाद राजकुमार अपने पिता को पहचान गया, और अपनी माँ के पास ले गया। रानी रोती हुई अपने पति के चरणों पर गिर पड़ी। माँ-पिता-पुत्र तीनों का सम्मिलन बड़ा ही अपूर्व था। सारे राज्य में उत्सव मनाया गया, किन्तु बड़ा राजा इतनी खुशी और चहल-पहल में भी उदास था। उसे रह-रह कर अपने बढ़ई मित्र की याद आ रही थी, जो उसके कारण अभी तक जेल में पड़ा सड़ रहा था। अतः वह अपने परिवार और कुछ सैनिकों को लेकर अपने राज्य में गया, जहाँ कि बूढ़े राजा-रानी ने उसका खूब स्वागत किया। उसने तत्क्षण बढ़ई-पुत्र को जेल से बाहर निकाला और एक सुन्दर स्त्री से उसका विवाह कर दिया। राज्य में खूब खुशिया मनाई गईं, घी के दीपक जलाए गए और चारों तरफ आनन्द ही आनन्द छा गया। राजा और बढ़ई—दोनों मित्र अपने-अपने परिवार के साथ सुखपूर्वक रहने लगे।



लक्ष्मी का आशीर्वाद

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

एक बार धर्मराज और लक्ष्मी लोगों की परीक्षा लेने के लिये एक जाड़े की मूसलाधार बरसती हुई सन्ध्या में अत्यन्त वृद्ध तथा वृद्धा का रूप धारण करके पृथ्वीलोक में आये।

नगर के एक धनी सेठ के द्वार पर जा कर वे फाटक खटखटाने लगे। दरवाजा खोलकर सेठ जी ने जब उन्हें देखा तो बिगड़ कर बोले—"अरे, कीचड़-सने पाँवों से सारे दालान में मिट्टी फैला दी। भागो यहाँ से।"

"सेठ जी हम इस रात में कहाँ जायं"—वृद्धा गिड़गिड़ाई, "ठंड से प्राण निकल रहे हैं। कहीं ठहरने भर को जगह दे दो।" परन्तु सेठ ने द्वार बन्द कर लिया। उन दोनों को प्रकाश में सेठ के महल के पास ही एक टूटा-फूटा सा घर दिखाई पड़ा। उसके टूटे किवाड़ों से दिये के प्रकाश की एक किरण भी दिखाई पड़ी। बुड्ढे ने बुढ़िया से कहा—"आओ चलो, उस घर में ही आश्रय मांग कर देखें।"

बुढ़िया ने कहा—"जब इतने बड़े सेठ ने अपने यहां स्थान नहीं दिया, तो ये कंगाल क्या देंगे, और ठहरने को जगह मिल भी गई तो रात भर में बिना ओढ़ने-बिछोने के इन फटे-भीगे कपड़ों में तो प्राण ही निकल जायेंगे।" वृद्ध बोला—"कुछ भी हो, मुझ से तो अब और चला नहीं जाता।" और उसने आगे बढ़कर द्वार थपथपाया। दूसरे ही क्षण हाथ में दिया थामे, मैली फटी धोती पहिने एक स्त्री ने द्वार खोला। उन दोनों की दशा देखते ही वह करुणा-भरे स्वर में बोली—"हाय! हाय! बाबा! तुम इस अन्धेरी रात में कहाँ भटक रहे हो। आओ, आओ, भीतर आजाओ।"



"सेठ जी हम इस रात में कहां जायें"— वृद्धा गिड़गिड़ाई, 'ठंड से प्राण निकल रहे हैं। कहीं ठहरने भर को जगह दे दो।"

उन्हें सहारा देकर वह भीतर ले गई। छोटी सी कोठरी में बस दो टूटी-फूटी चारपाइयां पड़ी थीं। उनमें से एक को खाली करके स्त्री ने उनसे बैठने को कहा। वृद्ध-वृद्धा के कपड़ों से जल चूकर कोठरी गीली हो चली, परन्तु उस स्त्री ने उसकी तनिक भी चिन्ता न करके, जल्दी-जल्दी अंगीठी में आँच सुलगा कर उन्हें तापने को कहा। फिर अरगनी पर

से दो पुराने परन्तु धुले हुए कपडे लाकर बोली, "बाबा! आप लोग अपने भीगे कपडे उतार कर इन्हें लपेट लो। क्या करू मैं बहुत ग़रीब हूँ। इससे इन्हीं दो कपड़ों में गुजर करनी होगी। आपके कपड़े मैं निचोड़ कर फैला दूंगी।"

उन्हें कपड़े बदलवा कर वह दालान में गई और दो पीतल की छोटी-छोटी थालियों में बथुए का साग तथा बाजरे की रोटिया रख कर ले आई। "माता जी!" उसने वृद्धा से कहा—"आज मेरे घर में यही भगवान का प्रसाद है। मुझे बहुत दुख है कि न तो घर में घी है, न दूध और न चीनी।"

"कोई बात नहीं बेटी। हमें तो यह भोजन बड़ा स्वादिष्ट लगा।" वे दोनों खाते हुए बोले।

थोड़ी देर मे उस स्त्री का पति भी आ गया। वह बेचारा भी रोजगार की तलाश मे दिन भर घूम कर अब थका-मांदा लौटा था।

पत्नी ने अतिथियों को भोजन खिला देने की बात उसे चुपके से द्वार पर ही बता दी थी।

वह भी बडा प्रसन्न हुआ। फिर दोनों ने अपने बिछौने उन दोनों वृद्धों को देकर उन्हें तो खाट पर सुलाया और आप दोनों एक फटा टाट ओढ़ कर धरती पर लेट गये।

प्रात काल अंधेरे ही जब पानी बन्द हो गया तो वे बुड्ढे-बुढ़िया जाने लगे। सरला (स्त्री) ने उन्हें हाथ जोड़ कर सूरज निकलने तक रोका। फिर घर मे जो चार दाने चने पड़े थे उन्हें पीस कर आटा गूंध, रोटिया बना, उनके साथ बाव दीं और कहा—"माता! हम निर्धन हैं। इसी से जैसी सेवा करनी चाहिये थी वैसी कर न सकी। आशा है आप क्षमा करेंगी।"

बुढ़िया ने उत्तर दिया—"बेटी! हम गरीबों की जो सेवा तूने की, उसका फल तुझे भगवान देंगे। पर आज तो तू जो चीज छूएगी वह दिन भर खाली न होगी।"

वे लोग चले गये तो सरला को अपनी बथुए की हांडी को साफ करने की याद आई। रसोई में जाकर उसने हाँडी उठाई तो देख कर आश्चर्य से भर उठी। उस हांडी मे अशरफिया भरी हुई थीं। अब जो उसने उसे उलट कर रखा तो वह दुबारा भर गई। वह उन अशरफियों को उठा कर रखती और हांडी में दूसरी भर जातीं। दिन भर में उसकी कोठरी अशरफ़ियों से भर गई। बस फिर तो उसके पति ने उन अशरफ़ियों को बेच कर बढ़िया मकान मोल ले लिया। एक कपड़े की दूकान खोल ली। घोडागाड़ी और टमटम खरीद ली। और वे सुखपूर्वक रहने लगे।

उस सेठ को जब यह समाचार मिला कि उसके निर्धन पड़ोसी एक रात में ही अमीर हो गये हैं, तो उसने सरला तथा उसके पति को बुला कर कारण पूछा।

सरला ने सरलतापूर्वक सब कथा सुना दी।

अब तो सेठ और सेठानी को रात दिन यही चिन्ता रहने लगी कि किसी प्रकार वे करामाती बुड्ढे-बुढिया मिल जाये तो वे भी हडिया भर अशरफ़ियां प्राप्त करलें।

देवता लोग तो इच्छा करते ही मनुष्य के हृदय की बात जान लेते हैं। एक रात जब बहुत जोर का पानी बरस रहा था, और ओले पड़ रहे थे तो वही बुड्ढे-बुढ़िया फिर

उसी सेठ के द्वार पर पहुँचे। द्वार पर खटखट सुनते ही सेठ ने बिजली के प्रकाश में से झांक कर उन्हें पहिचान लिया और जल्दी-जल्दी अपनी स्त्री को उन्हें लेने भेजा। बिजली बुझा कर एक दिया हाथ में लेकर सेठानी बाहर आई और झूठी ममता दिखा कर बोली—"हाय! हाय! बाबा! तुम कहाँ भटक रहे हो, आओ अन्दर आजाओ।" फिर घर की सबसे टूटी चारपाई पर उन्हें बैठा दिया। घर में अनेकों गरम वस्त्र होते हुये भी वह उनके लिये दो फटे-पुराने वस्त्र ले आई और बोली—"बाबा, घर में इस समय यही उपस्थित हैं।" फिर उनसे बिना पूछे ही घर की सबसे घिसी-पुरानी थालियों में बथुए का साग तथा जुआर की रोटी भी ले आई। ओढ़ने को दो फटे कम्बल भी कहीं से मंगा दिये। फिर सेठ-सेठानी भी उसी कमरे में गद्दे बिछा कर धरती पर लेट रहे।

सवेरे अँधेरे ही जब बुड्ढे-बुढ़िया जाने लगे तो सेठानी ने चना पीस कर रोटी बनाई और उनके साथ बाध दी और और बोली—"माता हम बड़े दरिद्र हैं। आपकी सेवा न कर सके, आशा है आप हमें क्षमा करेंगी।"

बुढ़िया ने कहा—"बेटी जैसी सेवा तूने की उसका फल तुझे भगवान देगा। हां, आज तू जिस काम को हाथ में लेगी वह दिन भर समाप्त न होगा।"

उन लोगों के जाते ही सेठ-सेठानी में झगड़ा हो पड़ा। सेठ चाहता था कि बथुए की हंडिया मैं खोलूं और सेठानी चाहती थी कि मैं खोलूं। अन्त में दोनों ने एक साथ हंडिया पकड़ी। इस छीना-झपटी में हंडिया टूट गई और कमरे में बथुआ ही बथुआ बिखर गया।

सेठानी झाड़ू लेकर कमरा धोने लगी। अब वह तो कमरा साफ करती, और कमरे में तुरन्त ही सड़ा हुआ बथुआ फिर बिखर जाता। सवेरे से सन्ध्या तक उसे कमरा साफ़ करना पड़ा।

ठीक है, जिसकी जैसी नीयत होती है, भगवान उसे वैसा ही फल देता है।



बेलकुमारी

वीरेन्द्र गोपाल

एक राजा के सात लड़के थे। छः का ब्याह हो चुका था। सबसे छोटा राजकुमार कुँवारा था। छोटा राजकुमार जब पढ़ने जाता था तब रोज उसकी छोटी भाभी उसे आर्शीवाद दिया करती--"तुमको बेलकुमारी मिले।"

छोटे राजकुमार ने एक दिन पूछा—"भाभी! बेलकुमारी कहाँ मिलेगी?"

भाभी ने कहा—"यहाँ से सात नदी पार एक जगल है, उसमें एक तालाब है। उस तालाब में ही बेलकुमारी रहती है।"

एक दिन बडे सवेरे उठ कर छोटा राजकुमार महल से चल दिया। चलते-चलते सात नदी पार करके वह एक तालाब के किनारे पहुँचा। वहाँ एक मुनि की झोंपडी थी। राजकुमार ने ऋषि को प्रणाम किया। मुनि ने पूछा—"बेटा! तुम कहाँ से आये हो और यहाँ क्यों आये हो?"

राजकुमार ने कहा—"मुनि जी! मैं बेलकुमारी के लिये आया हूँ।"

मुनि ने कहा—"उस तालाब को देखते हो न, उसके बीच में एक टापू है। उस टापू पर बेल का एक पेड़ है। उस पेड़ में एक ही बेल फला है। बेलकुमारी उसी बेल में सोई हुई है। परन्तु वहाँ जाकर उसे ले आना कठिन है। क्योंकि वहाँ राक्षसों का पहरा है।"

राजकुमार ने पूछा—"उनसे बच कर बेलकुमारी को ले आने की कोई तरकीब है?"

मुनि ने कहा--"हाँ, तरकीब है। यदि कोई मनुष्य उस तालाब को एक साँस में पार कर जाये। बेल के पेड़ से एक बकरा बँधा होगा, बकरे को खोल कर राक्षसों के सामने कर दे। राक्षस उसे खाने लगें तब वह झटपट पेड़ पर चढ़ जाये और बेल को तोड़ कर पानी में कूद पड़े और बिना साँस तोड़े तैर कर इस पार चला आये। यह सब काम एक साँस में होना चाहिये क्योंकि साँस टूटते ही राक्षस उसे खा जायेंगे।"

राजकुमार ने हिम्मत की। वह एक साँस में जाकर बेल को मुनि के पास ले आया।

मुनि ने कहा—"बेटा! इस बेल को घर ले जाकर फोड़ना, इसके भीतर से बेलकुमारी निकलेगी। पर खबरदार, रास्ते में इसे न तोड़ना, नहीं तो तकलीफ़ पाओगे।"

राजकुमार मुनि को प्रणाम करके बेल लेकर अपने घर की ओर चल पड़ा। कई जगल और पहाड़ पार करते-करते एक साझ को वह एक सरोवर के किनारे पहुँचा। राजकुमार बहुत थक गया था। वहाँ बैठ कर सुस्ताने लगा। सरोवर बहुत सुन्दर था। चारों ओर हरे-हरे वृक्ष लहलहा रहे थे। पक्षी कलोल कर रहे थे। राजकुमार ने सोचा—"लाओ, बेल को फोड़ कर बेलकुमारी को निकाले तो सही। कहीं मुनि ने धोखा न दिया हो?"

राजकुमार ने फल तोड़ डाला। उसमें से बेलकुमारी निकली। बेलकुमारी बहुत सुन्दर थी। राजकुमार ने कहा—"रानी! मैं थक गया हूँ।"

बेलकुमारी ने कहा—"मेरी गोद में सिर रख कर सो जाओ।"

राजकुमार सो गया। उसी घाट पर लुहार की एक लड़की पानी भरने आया करती थी। वह आई और उसने पूछा—"बहन! तुम कौन हो?"

बेलकुमारी ने कहा—"ये राजकुमार हैं। इनके साथ मेरा विवाह होगा।"

यह सुन कर लुहार की लड़की के मन में कपट उत्पन्न हुआ। वह आँखों में आँसू भर कर कहने लगी—"हाय! मैं बड़ी अभागिनी हूँ। मेरी सास मुझसे पानी भरवाती है। भला, मैं इतना बड़ा घड़ा तालाब में से भर कर ऊपर कैसे आऊँ?"

यह कह कर वह रोने लगी। बेलकुमारी को उस पर दया आई। उसने राजकुमार के सिर के नीचे अपनी रेशमी चादर का तकिया बना कर रख दिया और उठ कर लुहार की लडकी का घडा लेकर वह तालाब में पानी भरने के लिये झुकी। लुहार की लडकी ने चुपके से उसके पीछे जाकर उसे ऐसा धक्का दिया कि वह तालाब में गिर गई और डूब गई।

लुहार की लडकी राजकुमार के पास आई और उसका सिर अपनी गोद में लेकर बैठ गई। राजकुमार जब जागा, तब उसे एक सुन्दर बेलकुमारी के बदले एक बदसूरत लड़की को देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—'हो न हो, यह मुनि का हुक्म न मानने का दण्ड है। हाय! मैंने बेल को रास्ते में क्यों फोडा?'



सबसे छोटे राजकुमार ने तालाब के किनारे जाकर, धनुष से दबा कर, फूल को खींच लिया और उसकी टहनी ने उसे तोड़ लिया।

लुहार की लड़की को लेकर वह अपने घर पहुँचा। बहुत दिन बीत गये। लुहार की लडकी रानी की तरह सुख भोगने लगी। एक दिन सातों भाई शिकार को निकले। शिकार करते-करते वे उसी तालाब के किनारे आ निकले, जहाँ लुहार की लड़की ने बेलकुमारी को धक्का दिया था। उसी जगह तालाब में कमल का फूल

बड़ा फूल खिला था। छोटे राजकुमार का मन उसे देख कर लुभा गया। वह कहने लगा—"अहा! कैसा सुन्दर फूल है। कैसा रंग है! कैसी मीठी सुगन्ध है! इतना बड़ा फूल तो मैंने कहीं देखा ही नहीं। चाहे जो हो, मैं तो यह फूल लिये बिना यहाँ से जाऊँगा नहीं।'

बड़े राजकुमारों ने कहा—"न, न, फूल तोड़ना नहीं। कहीं किसी राक्षसी ने जादू न किया हो। कमल का फूल कहीं इतना बड़ा होता है ?"

परन्तु छोटे राजकुमार ने नहीं माना। तालाब के किनारे जाकर, धनुष को बढ़ा कर, उसने फूल को खींच लिया और उसकी डण्डी से उसे तोड़ लिया।

सब राजकुमार घर लौटे। बाकी राजकुमार तो तरह-तरह के जानवर और पक्षी शिकार करके ले आये थे, परन्तु छोटे राजकुमार के पास केवल एक लाल रंग का कमल था।



लुहार की लड़की ने मौका देख कर फूल को खिड़की की राह बाहर फेंक दिया।

छोटे राजकुमार ने कमल को अपने महल में लाकर रखा। एक दिन वह सैर के लिये बाहर गया हुआ था। लुहार की लड़की ने मौका देख कर कमल को खिड़की की राह बाहर फेंक दिया। राजकुमार ने लौट कर देखा तो वहाँ फूल नहीं था। उसने नक़ली बेल-कुमारी से पूछा तो उसने कहा—"फूल कुम्हला रहा था, मैंने उसे बाहर फेंक दिया।"

राजकुमार ने कहा—"हाय! हाय! बेलकुमारी! तुम्हारा दिल ऐसा कड़ा है? भला, उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?"

वह फूल जहाँ गिरा था, थोड़े दिन के पश्चात् वहाँ बेल का एक पेड़ उग आया। बड़ा होने पर उसमें एक फल लगा। माली ने उसे तोड़ लिया। घर ले जाकर उसने उसे तोड़ा तो उसमें से बड़ी रूपवती एक कन्या निकली। माली के कोई लड़का-लड़की नहीं थे। कन्या को पाकर वह बहुत ख़ुश हुआ। वह उसे बहुत प्यार करने लगा।

नकली रानी को खबर लगी कि माली के घर एक देव-कन्या जन्मी है। वह बहुत घबराई। वह जान-बूझ कर बीमार पड़ गई। नकली रानी का वैद्य और हकीमों ने बड़ा इलाज किया। परन्तु कोई रोग हो तब तो दवा फायदा करे। नकली रानी ने एक दिन राजकुमार से कहा—"मैंने रात में सपना देखा है कि माली के घर एक कन्या जन्मी है। वह डाकिनी है। उसे मार कर उसके लहू से मैं नहाऊँ तो मेरा यह रोग जाये।"

राजकुमार ने तत्काल उस कन्या का लहू लाने का हुक्म दिया। नक़ली रानी ने उसके लहू से स्नान किया, तब उसका रोग छूटा। माली बेचारा बहुत रोया।

माली ने बेलकुमारी के शरीर को ले जाकर अपने बाग़ मे गाड़ दिया। कुछ दिनों के पश्चात् वहाँ फिर एक बेल का पेड़ उगा। बढ़ते-बढ़ते वह पेड बड़ा हो गया और उसमें एक फल लगा।

नकली रानी से राजकुमार की बनती नहीं थी। वह बड़ी कर्कशा थी। रोज बीमारी का कोई न कोई बहाना करके राजकुमार को परेशान करती थी।

एक दिन राजकुमार की एक साधु से भेंट हुई। साधु ने राजकुमार की उदासी का कारण पूछा। राजकुमार ने सब सच-सच कह दिया। साधु ने राजकुमार को एक अंगूठी दी और कहा—"इस अंगूठी को पहन लेने से तुम पक्षियों की बोली समझ सकोगे। महल में मन न लगे तो बाग़ में आकर चिड़ियों से कहानियाँ सुना करो।"

अंगूठी पाकर राजकुमार बड़ा खुश हुआ। वह उसी दिन अंगूठी पहन कर बाग मे गया। दो कबूतर आपस में बातें कर रहे थे—"इस अभागे राजकुमार को देखो, लुहार की लड़की ने इसे कैसा मूर्ख बना रखा है।"

राजकुमार अंगूठी के ज़ोर से कबूतरों की बोली समझता था। उसने पूछा—"मुझसे सब हाल खुलासा कहो।"

कबूतरों ने बेलकुमारी और लुहार की लड़की का सारा क़िस्सा कह सुनाया। सब हाल सुन कर राजकुमार बहुत पछताया। उसने पूछा—"बेलकुमारी अब कहाँ मिलेगी?"

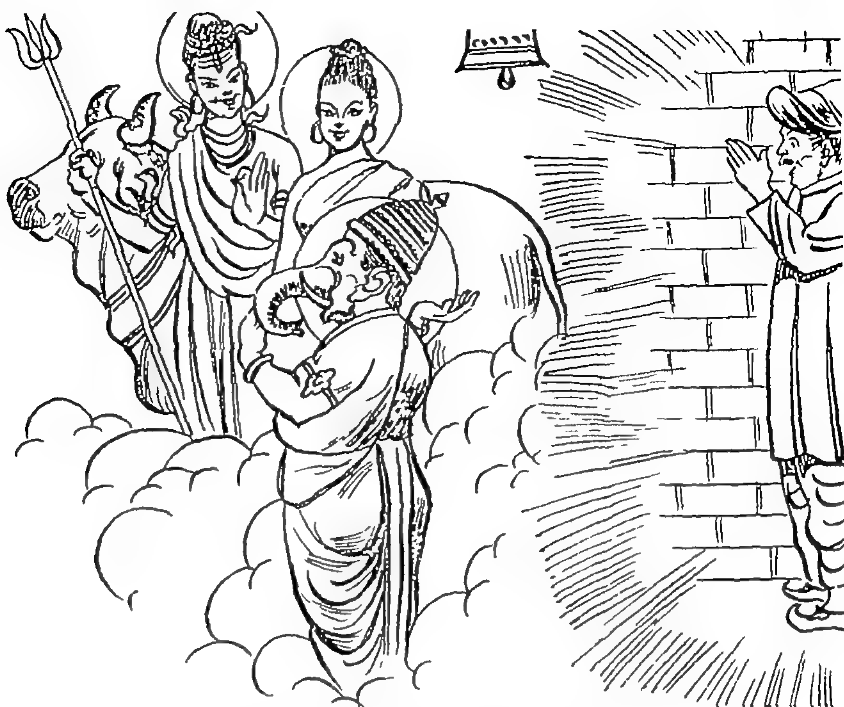
कबूतरों ने बेल का पेड दिखा दिया और कहा—"इस पेड़ मे एक ही फल लगा है। बेलकुमारी उसी में है।"

राजकुमार ने बेल को तोड़ लिया। उसमें से बेलकुमारी निकल आई। बेलकुमारी को पाकर राजकुमार बहुत ही खुश हुआ।

वह बेलकुमारी को लेकर महल में आया। बेलकुमारी को देखते ही लुहार की लड़की डर के मारे पीली पड़ गई। राजकुमार उसे मारने दौड़ा। बेलकुमारी ने दया करके उसे बचा लिया।

लुहार की लड़की फिर अपने घर चली गई और राजकुमार और बेलकुमारी सुख से रहने लगे।





गणेश जी बोले—"जो हाँ, उसे पचास हजार रुपये तो दिलवा दिए हैं, बाकी के लिये बनिये को दीवाल में चिपका दिया है।"

बुन्देलखण्डी कहानी

देवता का दान

जहूरबख्श

गाँव के बाहर बरगद का एक पेड था, जिसके पास ही गणेश जी का एक छोटा-सा मन्दिर था। गाँव में और मन्दिर थे ही नहीं, इसलिए सब लोग इसी मन्दिर में पूजा करने आया करते थे। गाँव में एक भिखारी भी रहता था। भीख मागना ही उसका काम था। गाँव छोटा सा था, भिखारी को काफी भीख नहीं मिलती थी, इसलिए यह और कोई उपाय न देख मन्दिर के दरवाजे पर बैठने लगा। उसने सोचा, लोग यहाँ धर्म करने आते हैं, और नहीं तो पेट भरने लायक भीख मिल ही जाया करेगी।

भिखारी दिन भर मन्दिर के दरवाजे पर बैठा रहता, और जब वहाँ किसी को आते देखता तो 'शिव-शिव' रटने लगता था। इस तरह बेचारा दिन भर गणेश जी और शिव जी का नाम लिया करता था, मगर शाम तक उसे भीख मिलती थी—सिर्फ दो-चार मुट्ठी अन्न और कुछ फल-फूल और कभी-कभी चार-छ पैसे। भला इतनी थोड़ी आमदनी से किसी की गुज़र कैसे हो सकती है? फिर भिखारी को अपना ही नहीं, अपनी बेटी की भी चिन्ता करनी पड़ती थी। उसकी बेटी का नाम था कमला और वह बडी चतुर—बड़ी समझदार थी। मगर चतुराई और समझदारी से तो पेट की आग बुझती नहीं, उसे तो भोजन चाहिए। इसलिए कमला कभी-कभी अपने बाप को भोजन-पानी के लिये तग

करने लगती थी। उस वक्त भिखारी के दिल पर बड़ी चोट लगती थी। उसकी आँखें भर आती थीं। वह चिन्ता के समुद्र मे डूबने-उतराने लगता था।

गर्मी के दिन थे। दोपहरी का समय था। ऊपर आसमान और नीचे धरती धक-धक जल रही थी। चारों तरफ सन्नाटा छा रहा था। ऐसे ही समय में महादेव पार्वती लोगों का सुख दुःख देखने इस संसार मे आए। चलते-चलते वे उसी गॉव मे पहुँचे और गणेश जी के मन्दिर के सामने से निकले। भिखारी उन्हे आते देख जोरों से 'जय-शिव, जय-शिव' की रटना करने लगा।

भिखारी की यह हालत देख पार्वती को बड़ी दया आई। उन्होंने महादेव जी से कहा—"उफ! इस भिखारी की तरफ़ तो देखो! बेचारा कितना दुःखी है। देखो तो, कितने प्रेम से तुम्हारा नाम जप रहा है। पर एक तुम हो, कितने कठोर! तुमने आज तक इस पर दया न की। मैंने सुना था कि लोग अब बड़े पापी हो गए हैं। वे अब देवताओं की पूजा नहीं करते। मगर नहीं, आज मालूम हुआ कि इसमें उनका कोई अपराध नहीं है। सब अपराध देवताओं का ही है। इसी आदमी को लो, बेचारे को तुम्हारा नाम लेते बरसों बीत गए, इतने पर भी अभागा पेट भर भोजन तक नहीं पाता। जब देवता ही ऐसे कठोर हो जाएंगे, तब कोई काहे को उनकी पूजा करेगा।"

महादेव को पार्वती की बात लग गई। वे पार्वती से बोले—"असल बात क्या है, यह तुम नहीं जानतीं। जान भी नहीं सकतीं, क्योंकि तुम्हारा हृदय ही इतना कोमल है। मगर नहीं, तुम रंज न करो। मैं आज ही कुछ बन्दोबस्त कराए देता हूँ, जिससे इस भिखारी का दुःख दूर हो जाएगा।"

इतना कह कर महादेव जी पार्वती के साथ मन्दिर में पहुँचे। माता-पिता को आते देख गणेश जी उठ कर खड़े हो गए। उन्होंने बड़े प्रेम से माता-पिता को प्रणाम किया। महादेव जी ने गणेश जी को आशीर्वाद दिया और कहा—"देखो बेटा, यह भिखारी बरसों से तुम्हारे द्वार पर बैठा, मेरा नाम जपा करता है। मगर तुमने अब तक इस पर दया नहीं की। अब ऐसा कुछ उपाय करो, जिससे इस बेचारे का दुःख दूर हो जाए।"

गणेश जी ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया—"अच्छी बात है पिता जी, सात दिन के भीतर उसका दुःख दूर हो जाएगा। उसे कहीं न कहीं से एक लाख रुपये मिल जाएंगे।"

गणेश जी का उत्तर सुन कर महादेव पार्वती आगे चले गए।

इसी समय एक बनिया मन्दिर मे पूजा करने आया था। वह आड़ में छिपा-छिपा महादेव जी और गणेश जी की बातें सुन रहा था। उसने सोचा, 'यह तो बहुत अच्छा मौका है। यदि थोड़ी चतुराई से काम लूं, तो सहज ही दो लाख का मालिक हो सकता हूं।' बस, वह बड़ी खुशी से भिखारी के सामने पहुँचा, और उसे प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। भिखारी को आज तक किसी ने न प्रणाम किया था, न कोई उसके पास आकर बैठा ही था। बनिये के इस काम से भिखारी ने समझा कि यह बेशक कोई भलामानुस है। वह मन-ही-मन प्रसन्न हुआ और बनिये से बोला—"बाबा आप बहुत दयालु जान पड़ते हैं। कहिए मेरे पास आने की कृपा क्योंकर हुई? आप नहीं जानते, मैं एक गरीब भिखारी हूं।"

बनिये को तो अपना मतलब गांठना था, मीठेपन से बोला—"आप भिखारी हैं। कौन कहता है कि आप भिखारी हैं ? मुझे अच्छी तरह मालूम है कि आप एक पहुँचे हुए महात्मा हैं, और आपके दर्शन से लोगों के पाप दूर हो जाते हैं। मैं भी आपके दर्शन करने चला आया हूँ। मुझे आप से कुछ पूछना है, यदि आज्ञा हो तो पूछूं।"

भिखारी—"ख़ुशी से पूछिए।"

बनिया—"भला दिन भर में आपको कितनी भीख मिल जाती है ?"

भिखारी—"भई, मिलने की क्या पूछते हो, पेट के भी लाले पड़े रहते हैं। रोज़ाना दो-चार मुट्ठी अन्न मिल जाता है, कभी दो-चार पैसे भी मिल जाते हैं। किसी तरह दिन काट लेता हूँ।"

बनिया "राम राम ! आप जैसे महात्मा और यह कष्ट ! इस गाँव के आदमी भी क्या आदमी हैं ? आप की थोड़ी भी सहायता नहीं कर सकते ! आप कैसे यह कष्ट सह लेते हैं ? मुझे तो आप पर बड़ी दया आती है। मेरे जी में आता है कि आपकी कुछ सेवा करूं, पर कहने में डर मालूम होता है।"

भिखारी—"आप, मेरी क्या सहायता कर सकते हैं।"

"हें-हें-हें !"—बनिया दांत निकाल कर बोला—"मेरी इतनी हैसियत कहाँ, जो आपकी कुछ सेवा कर सकूं। मगर एक बात है। आज से सात दिन तक आप को जो कुछ भी मिले, वह मुझे दे दीजिये। बदले में, मैं आप को सौ रुपये दे दूंगा।"

सौ रुपये का नाम सुनते ही भिखारी मारे खुशी के उछल पड़ा। उसने सोचा, 'अगर सौ रुपये मिल जाएं, तो क्या कहना ! यहाँ तो सात दिन में सात आने का सामान भी न मिलेगा ! तब तो सौ रुपये छोड़ देना सरासर बेवकूफ़ी है—पूरा गधापन है।'

मगर इसी समय उसे लड़की का ख्याल आ गया। मैं सौ रुपये लेकर घर पहुँचा और कमला बिगड़ने लगी तो ? उसकी सलाह भी ले लेनी चाहिए। बस, यह विचार आते ही उसने बनिये को जवाब दिया—"आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, मगर मैं अभी कुछ नहीं कह सकता, सोच-विचार कर कल कहूँगा !"

जब बनिया चला गया, तब भिखारी ने कमला को बुलाया और उसे सब हाल सुनाया। चतुर कमला फ़ौरन समझ गई कि इसमें ज़रूर बनिये की कोई शैतानी है। उसने पिता से कहा—"बनिया बिना अपने फ़ायदे के क्यों सौ रुपये देने चला ! ख़ैर, मैं कल उससे सब बातें तय कर लूंगी, मगर तुम बीच में न बोलना।"

उधर बनिये का बुरा हाल था। रात भर उसके पेट में चूहे उछलते रहे। बड़ी मुश्किल से सवेरा हुआ। बनिये की जान में जान आई। वह हाथ-मुंह धोते ही भिखारी के पास जा पहुँचा और छूटते ही बोला—"क्या विचार किया आप ने !"

कमला भी बनिये से निबटने को तैयार बैठी थी। बनिये की बात सुनते ही उसने जवाब दिया—"सेठ जी, हम लोगों ने विचार कर लिया। भला सौ रुपये में क्या होता है ! इतना सस्ता सौदा होना मुश्किल है। माफ़ कीजिए।" कमला का उत्तर सुनते ही बनिये पर मानो बिजली गिर पड़ी। पर, लाख रुपये का लालच छोड़ना भी तो कठिन था। वह दो सौ रुपये देने को राज़ी हो गया। अब तो कमला का सन्देह और भी पक्का

हो गया। वह समझ गई कि बनिया जरूर किसी भारी लाभ के लिये ही इतने रुपये देना चाहता है। उसने जवाब दिया—"सेठ जी, इतना सस्ता सौदा और कहीं होता होगा। सौ-दो-सौ या हज़ार-दो-हज़ार में होता ही क्या है! जो चीज़ आप कौड़ियों के मोल खरीदना चाहते हैं, वह लाख रुपये में भी सस्ती है।"

यह सुन कर बनिया बहुत घबराया; परन्तु उसने अपनी कोशिश जारी रखी। मारे लोभ के वह अन्धा हो रहा था—उसको लोभ का भूत सवार हो गया था। उसने सौ-दो-सौ से बढ़ कर अन्त में पचास हज़ार लगा दिए। अब कमला ने सोचा—'इतने रुपये थोड़े नहीं होते। बैठे-ठाले इस फायदे को छोड़ना ठीक नहीं।' उसने बनिये से कहा—"ख़ैर, आप नहीं मानते, तो मैं ही आपकी बात माने लेती हूँ। मगर शर्त यह है कि रुपये अभी मिलने चाहिएं।" यह शर्त मन्जूर करने में बनिये को क्या उज्र थी! वह खुशी-खुशी घर लौटा। उसने सोचा—'पचास हज़ार रुपये देकर एक लाख लेना कुछ बुरा नहीं है। दो लाख न सही, डेढ़ लाख का मालिक तो बन ही जाऊंगा। अहा! मेरी तकदीर भी कितनी चोखी है। सात ही दिन में पचास हज़ार का लाभ हो गया।' उसने घर आते ही भिखारी के पास पचास हज़ार रुपये भेज दिए।

अब बनिया हर रोज़ भिखारी के पास आता, और उसकी दिन भर की भीख घर ले आता। इस तरह छ दिन बीत गए। अब तो बनिये को बड़ी फिक्र हुई। सातवें दिन वह फिर गणेश जी के मन्दिर में पहुँचा। उसने देखा कि आज फिर महादेव-पार्वती मन्दिर में पधारे हैं। बस, वह दीवाल से कान सटा, उनकी बातें सुनने लगा। मगर यह क्या—उसका कान दीवाल से चिपक गया। उसने कान छुड़ाने की बहुत कोशिश की, पर कान टस से मस न हुआ। तब वह दाहिने हाथ की सहायता से कान छुड़ाने लगा। इतने में हाथ भी दीवाल से चिपक गया।

इधर महादेव जी ने गणेश जी से पूछा—"बेटा, इस भिखारी के लिये कुछ इन्तजाम हुआ?"

गणेश जी बोले—"जी हाँ. उसे पचास हज़ार रुपये तो दिलवा दिए हैं, बाकी के लिये बनिये को दीवाल से चिपका दिया है। यह बनिया बड़ा लोभी और कंजूस है। इसने गरीबों से एक एक के चार-चार वसूल कर अपना घर बनाया है। रुपये वसूल करने में इसने गरीबों पर दया नहीं की। उनके बच्चे भूखों मरते रहे पर इसने चौगुने रुपये वसूल करके भी सन्तोष नहीं किया। इस तरह इसने एक लाख रुपयों से अपनी तिजारी भर ली। गरीबों के माल से यह सुख नहीं उठा सकता। अब जब तक यह भिखारी को बाकी पचास हज़ार रुपये न दे देगा, तब तक दीवाल से ही चिपका रहेगा।"

गणेश जी की बातें सुन कर बनिये ने अपना माथा पीट लिया। उसकी आंखों से आंसू बरसने लगे। जब उसने घर से पचास हज़ार रुपये मंगवा कर भिखारी को दे दिए, तब कहीं दीवाल से उसका पीछा छूटा।



नागा और शेर

सावित्रीदेवी वर्मा

शिलौंग के दक्षिण में डिगी नाम का एक पर्वत है। एक समय वहाँ पर इतना घना जगल हुआ करता था कि दिन को भी अमावस्या-का-सा अँधेरा छाया रहता था। नीचे पेड़ के मोटे-मोटे तने, ऊपर छाते के सदृश फैली हुई पेड़ों की घनी टहनियाँ, मानो जंगल को किसी हरी छत ने ढक रखा हो। कोसों तक जंगल ही जगल था। न कोई राह, न कोई घाट। लता-गुल्मों, पेड़-पौधों और झाड़ी-झखाड़ों के मारे वहाँ तिल भर भी जगह पाँव रखने को नहीं बचने पाई थी।

आरम्भ में लोहतास नागाओं का एक बहादुर सरदार वहाँ आकर बस गया। धीरे-धीरे उसके वश का विस्तार होने लगा। अब उन्हें और जगह चाहिये थी। एक दिन गिरोह के सब लोग इस बात पर विचार करने के लिये इकट्ठे हुए कि अब और नये झोंपड़े कहाँ बनाये जायें? एक साहसी नवयुवक बोला, "भाइयो! अब तो इस जगल को ही काटा जाये तभी हमारा काम बन सकता है।"

दूसरा बोला, "पर इस घने जंगल को काटना कोई सहज काम नहीं है। यहाँ तो हाथ को हाथ नहीं सूझता। भला, हम कुल्हाड़ी कैसे चलायेंगे?"

पर अधिकाश नौजवानों की यही राय रही कि एक छोर से कटाई शुरू की जाये तो धीरे-धीरे जगल साफ़ किया जा सकता है। खैर, एकमत होकर सब कटाई में जुट गये। सबसे पहले उन्होंने एक बड़े पलास के पेड़ को काटना शुरू किया। शाम तक उन्होंने उसका तना काट कर गिरा दिया। पेड़ के गिरते ही जगल में काफी रोशनी छा गई। उस रोज़ आधी रात तक खूब गाना-बजाना होता रहा। पर दूसरे दिन सबने आश्चर्य से देखा कि जड़ से नया तना निकल आया है तथा पेड़ और अधिक सघन होकर रोशनी को रोके खड़ा है। दूसरे दिन उन्होंने फिर पेड़ को काट गिराया, पर सुबह होते ही वह फिर अपनी जगह नये सिरे से उग कर मानो उनको ललकारता हुआ खड़ा दिखाई पड़ा।

सब नौजवान नागाओं ने सलाह की कि चलो अपने दल के बूढ़े बाबा से इसका रहस्य पूछें। वह जरूर इस करामाती पेड़ के विषय में कुछ जानते होंगे। बूढ़े बाबा ने उनकी बात सुनकर सिर हिला कर कहा, "देखो एक बात मैं तुम्हें बताता हूँ। हमारे आदि पुरखा के साथ उनके एक मित्र ने घात किया था। उन्होंने उस मित्र को शाप दिया कि जा तू शेर बन जा। मुझे तो लगता है कि उसी शेर की बिरादरी का कोई दुष्ट आकर हमारे काम मे बाधा डालता है। शेर नहीं चाहते कि जगल कटे और उनके राज्य के हिस्से पर मनुष्य का कब्जा हो। सो तुम लोग आज रात को छुप कर देखो कि उस कटे हुए वृक्ष के पास कौन आता है?"

रात को नौजवान नागाओं ने देखा कि उस कटे हुये पेड के तने को एक भयानक शेर चाट रहा है और जिस हिस्से को वह चाटता है वह हरा-भरा होकर ऊँचा बढ़ता

जा रहा है। दूसरे दिन उन्होंने सारा हाल बूढ़े सरदार से कहा। सरदार ने सलाह दी कि पेड़ की जड़ें खोद कर उसमें आग लगा दी जाये ताकि उसका नामोनिशान ही न बचे। ऐसा करने पर सचमुच दूसरे दिन पेड़ नहीं उगा। पर शेर ने क्रोधित होकर सरदार के एक नौजवान बेटे को मार डाला। जब सरदार को यह बात पता लगी तो उसने सब नागाओं को इकट्ठा करके कहा, "देखो, यह शेर हमारी जाति का दुश्मन है। इसको जल्द से जल्द खत्म कर डालना चाहिये। तुम लोग पेड़ के पास की धरती साफ करके वहाँ दो पेड़ों के तने जोड़ कर खड़ा कर दो। मैं उसके पीछे भाला लेकर खड़ा रहूँगा। तुम सब ढोलक बजा कर शेर को उस ओर खदेड़ कर ले आना।"

दूसरे दिन सबने मिल कर शेर को खदेड़ना शुरू किया। शेर बाँसों के झुरमुटों में पड़ा सो रहा था। पीछे से हो-हल्ला सुन कर वह गुर्राता हुआ आगे को बढ़ चला और उसी पेड़ के पास आकर खड़ा हो गया। बूढ़े सरदार ने जब शेर को देखा, तो अपने जवान बेटे की मौत का बदला लेने के इरादे ने उसकी भुजाओं में नौजवानों-का-सा बल ला दिया और उसने निशाना साध कर शेर पर भाला फेंका, भाला शेर की पीठ में आकर लगा और वह भयानक रूप से गुर्राता हुआ सरदार पर झपटा। सरदार ने अपना सिर ढाल से ढक कर उछलते हुए शेर का पेट छुरे से चीर कर रख दिया और अपनी रस्म के अनुसार उसने अपने बेटे के हत्यारे के पंजे काट लिये। इसके बाद उसने सब नौजवानों को इकट्ठा कर के कहा, "इस शेर का सिर काट कर गाँव के बीच जो पेड़ है उस पर टाँग दो और उसके नीचे की धरती को सब अपने भालों की मूँठ से रौंद कर निशान बनाओ, ताकि इसकी शेरनी अब इस गाँव में घुमने की हिम्मत न कर सके।"



रात को नौजवान नागाओं ने देखा कि उस कटे हुए पेड़ के तने को एक भयानक शेर चाट रहा है और जिस हिस्से को वह चाटता है वह हरा भरा होकर ऊँचा बढ़ता जा रहा है

ऐसा ही किया गया। रात को जब शेरनी अपने शेर को खोजती हुई उस पेड़ तक आई तो पेड़ के नीचे अनेक भालों की मूँठों के निशान देख कर वह सोचने लगी—"दिखता है इस गाँव में बहुत से बहादुर बल्लमधारी हैं। अब यहाँ ठहरना उचित नहीं। पर मैं इन से बदला तो जरूर लूँगी, नहीं तो हमारे वंश की रक्षा फिर कैसे होगी?"

शेरनी मौके की खोज में रही कि कोई ऐसा नागा मिल जाये जिसकी मदद से मैं इनसे बदला ले सकूँ। संयोग से एक दिन जगल में एक नागा से उसकी भेंट हो गई। उस समय शेरनी अपने बच्चों को शिकार के दाव सिखा रही थी। नागा अकेला था और ये तीन। मनुष्य जाति को देखते ही शेरनी का खून खौलने लगा पर उसे एक बात सूझी। उसने नागा से कहा, "देख, मैं चाहूँ तो तुझे अभी फाड़ कर रख दूँ। पर अगर तू अपने सरदार से बदला लेने में मेरी मदद करे तो न केवल मैं तेरी जान बख्श दूँगी, बल्कि कई अच्छी और अनोखी जड़ी-बूटियाँ भी तुझे लाकर दिया करूँगी, उनके प्रयोग से तू जल्द ही नागाओं का सरदार बन जायेगा।"

वह नागा लोभ में आ गया और उसने शेरनी से दोस्ती कर ली। अब वह गाँव में लोगों को जड़ी-बूटी बाँटने लगा और हकीम के रूप में काफी प्रसिद्ध भी हो गया। शेरनी रात को अक्सर उसके घर आती और उसे जड़ी-बूटियाँ दे जाया करती। साथ ही साथ उससे गाँव का सब भेद पता लगाकर वह रात को ऐसे मार्ग में छुप कर बैठ जाती जहाँ कोई अकेला नागा पहरे पर होता और चुपके से जाकर उस पर हमला कर देती। इस हमले से नागाओं का सरदार बड़ा परेशान था। एक दिन उसने अपने लोगों को इकट्ठा करके कहा, "हो न हो यह शेरनी की ही करतूत है। इसलिये जंगल में हाँका डालो।"



शेर भयानक रूप से सरदार पर झपटा। सरदार ने उछलते हुए शेर का पेट छुरे से चीर कर रख दिया

यह बात शेरनी को उस के मित्र नागा ने जाकर बता दी। शेरनी साव-धान हो गई और उस दिन अपने बच्चों के साथ वह एक गहरी कन्दरा में जा छुपी। उसी रात को उसने फिर एक नौजवान नागा को मार डाला। फिर सबने मिलकर हाँका डाला पर शेरनी का कहीं पता नहीं चला। कुछ सोच कर सरदार ने कहा, "हो न हो, हम लोगों में से जरूर कोई शेरनी को सारा भेद बता देता है। ठहरो, मैं उसका पता लगाता हूँ।"

यह कह कर उसने कुछ मंत्र पढ़कर राख उड़ाई और उस हकीम नागा की ओर उँगली उठा कर कहा, "यही हमारा भेदिया है। अगर यह अपने को सच्चा साबित करना चाहता है तो इसे आठ दिन के अन्दर ही एक शेर मारकर उसकी खोपड़ी के ऊपर हाथ रख कर शपथ खानी होगी। यदि यह बेकसूर है तब तो इस पर कोई मुसीबत नहीं आयेगी और यदि इसने अपने दल से दगा किया होगा तो आठ दिन में ही इसका नाश हो जायेगा।"

उसी रात को जब शेरनी उस हकीम नागा के पास आई तो उसने शेरनी से सरदार की सारी बात कही। शेरनी बोली, "तू फिक्र मत कर। मैं तुझे शेर की एक

पुरानी खोपड़ी ला दूंगी।" पर संयोग से उस दिन हकीम नागा का छोटा लड़का जाग रहा था और उसने अपने बाप और शेरनी की सारी बात सुन ली।

दूसरे दिन खेल के समय उसने यह बात अपने साथियों से कह दी। फैलते-फैलते यह बात सरदार के कानों में भी पहुँची। अब तो सरदार का शक और पक्का हो गया और उसके कहने पर हकीम नागा की मुश्कें कस कर जिस पेड़ से शेर का सिर लटक रहा था उसी से उसे बाँध दिया गया।

दूसरे दिन सब नागाओं ने मिलकर अचानक ही शेरनी को जा घेरा और बरछों से उसका काम तमाम कर दिया। लौट कर जब वे आये तो उन्होंने देखा कि वह हकीम नागा भी कराह-कराह कर दम तोड़ रहा है। यह देखकर सरदार बोला, "यह तो होना ही था। हमारे पूर्वजों का यह शाप है कि जो किसी शेर से दोस्ती करेगा, वह उस शेर के मरते ही मर जायेगा। इसे अपनी करनी की ठीक ही सजा मिली।"





"मैं नहीं जानता था कि मेरे राज्य में ऐसे सुन्दर प्रदेश भी मौजूद हैं।" महाराज ने प्रसन्न होकर कहा

'माचल प्रदेश की लोककथा के आधार पर

अनोखी हड्डी

भीष्म साहनी

'स्वर्ण देश' के महाराज उदयगिरि पचास वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते महाराजाधिराज हो गये। देश-देशान्तरों में उनकी विजय-पताका लहरा चुकी थी, उनके पराक्रम का कोई पारावार न था। अनेक वन्दी राजा उनके भीमकाय दुर्ग में अँधेरी दीवारों को ताकते हुए दम तोड़ रहे थे, और उन्हीं के देशों की सुन्दर रमणियाँ महाराज के अन्त पुर की शोभा बढ़ा रही थीं। जब भी महाराज की सेना किसी राज्य को रौंद कर लौटती, तो महाराज की विपुल स्वर्णराशि और भी बढ़ उठती, और उनके मुकुट में नये हीरे-मोती चमकने लगते। पर महाराज की आँखें अब भी क्षितिज पर अटकी हुई थीं।

वर्षा ऋतु के अन्तिम दिन थे। महाराज अपने मन्त्रियों के साथ अपने राज्य के उत्तरी पर्वतों पर आखेट खेल रहे थे। दोपहरी ढल चुकी थी। महाराज एक नव-वयसक हिरन का पीछा करते हुए अपना रास्ता भूल गये। आखेट की उत्तेजना में वे मीलों की दूरी तक अपना घोड़ा दौड़ाते चले गये। पर हिरन का कुछ पता न चला। जंगल की सीमा आन पहुँची और महाराज थक कर एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये।

पर दूसरे ही क्षण महाराज ने सामने आँख उठा कर देखा तो पुलकित हो उठे। ढलते सूर्य के लाल प्रकाश में सामने एक विशाल पर्वत अपना गर्वपूर्ण माथा ऊँचा किये खड़ा था, और उसके पाँवों में एक बड़ी-सी नीली झील बिछी हुई थी। झील इतनी स्वच्छ थी, मानो प्रकृति के अथाह सौन्दर्य के लिए एक दर्पण हो। पहाड़ की तराइयाँ देवदारु के वृक्षों से लदी हुई थीं, और दाईं ओर ढलान पर एक छोटा-सा नगर बसा हुआ था, जिसकी छतें सायंकाल के धुँधले प्रकाश में दूर तक फैलती हुई नज़र आ रही थीं।

महाराज इस अपूर्व दृश्य को एकटक देख रहे थे। इतने में उनके साथी उन्हें ढूँढते हुए आ पहुँचे।

"मैं नहीं जानता था कि मेरे राज्य में ऐसे सुन्दर प्रदेश भी मौजूद हैं।" महाराज ने प्रसन्न होकर कहा। पास खड़े हुए महामन्त्री ने हाथ बाँध कर उत्तर दिया

"महाराज, यह प्रदेश आपकी राज्य-सीमा से बाहर है। आपके राज्य की सीमा यहाँ पर समाप्त हो जाती है जहाँ पर आप खड़े हैं।"

"तो क्या यह प्रदेश मेरे राज्य का अंग नहीं है?"

"नहीं महाराज, यह एक छोटा-सा स्वाधीन देश है, जिसके लोग मछलियाँ पकड़ कर अपना निर्वाह करते हैं।"

महाराज के मन में एक गहरी टीस उठी और उनकी आँखें ईर्ष्या से विचलित हो उठीं। "यह मेरे देश का अंग नहीं है!" कहते हुए और अपने हाथों की उंगलियाँ एक मुट्ठी में समेटते हुए वे दृढ़ निश्चय से बोले: "आज ही लौट कर सेना को तैयार करो, महामन्त्री, मैं स्वयं इस प्रदेश पर चढ़ाई करूँगा। मेरे राज्य की सीमा अब वह पर्वत-शिखर होगा।" कहते हुए महाराज वहाँ से लौट पड़े।

इस घटना को अभी दस दिन भी न होने पाए थे कि वह शान्त वनस्थली सैनिकों के सिंहनाद से गूँजने लगी। जंगल के हिंसक पशु भी महाराज के पराक्रम से त्रस्त होकर भाग उठे। झील की शान्त जलराशि, जिस पर पहले गाते हुए मछुए मछलियाँ पकड़ते थे, अब उन्हीं के खून से लाल होने लगी। महाराज के वीर सैनिकों की बाण-वर्षा पेड़ों और पत्थरों को भी क्षत-विक्षत करने लगी।

तीन दिन बीत गये। महाराज की सेना झील पार करके नगर की दीवारों तक जा पहुँची। पर तो भी मछुओं ने हथियार नहीं डाले। रात के वक्त, जब महाराज की सेना में विजय का कोलाहल होता, वहाँ नगर पर मरघट की-सी स्तब्धता छा जाती। कहीं पर कोई टिमटिमाता दीपक भी नज़र न आता। मछुए, बच्चे, बूढ़े दिन भर लड़ते, और रात को अपने मृत सम्बन्धियों की लाशों को ठिकाने लगाते, अपने ज़ख्मों को सहलाते, फिर इस कराल अन्धकार में कहीं भी आशा की कोई रेखा न देखते हुए, धरती पर हाथ रख कर अपने प्राणों की बलि देने की शपथ ले लेते।

प्रातःकाल का समय था। महाराज अपने शिविर में बैठे नये आक्रमण का आयोजन कर रहे थे, इसी समय द्वारपाल ने आकर प्रणाम किया:

"महाराज, एक आदमी द्वार पर खड़ा है, आपसे मिलना चाहता है।"

"कौन है?"

"कोई बूढ़ा आदमी है, महाराज ! कहता है मरने से पहले महाराज के दर्शनों की लालसा से यहाँ आया हूँ।"

"कोई राजदूत होगा।" एक मन्त्री ने कहा।

"या छद्मवेष में कोई सैनिक होगा।" दूसरे मन्त्री ने कहा।

"उसके पास कोई अस्त्र नहीं, महाराज ! वह बहुत बूढ़ा है, और लाठी के सहारे बडी कठिनता से खड़ा हो पाता है।"

महाराज ने प्रवेश की स्वीकृति दे दी।

थोड़ी देर बाद एक वृद्ध पुरुष, लम्बा, मैला-सा चोगा पहने, अवस्था के बोझ से दबा हुआ, अपनी लाठी पर झुक कर चलता हुआ, महाराज के सामने आ खड़ा हुआ।

"क्या है, वृद्ध ? तुम कौन हो ? मेरे पास समय बहुत थोडा है।" बूढा नमस्कार करते हुए बोला, "महाराज समय तो मेरे पास भी बहुत थोडा है। महाराज के यश और कीर्ति से चारों दिशाएँ गूँज रही हैं, मैं आपके दर्शनार्थ यहाँ चला आया हूँ।"

महाराज थोड़ी देर तक उसके चेहरे की ओर देखते रहे फिर धीरे से बोले .

"शत्रु-देश से आए हो ?"

"नहीं महाराज, मैं आप ही के राज्य का सेवक हूँ, यहाँ से थोड़ी दूरी पर मेरा झोपड़ा है।"

"तुम क्या चाहते हो वृद्ध ?"

"दान-दक्षिणा का प्रार्थी हूँ, महाराज मैं बहुत बूढ़ा हूँ।" कहते हुए वृद्ध ने अपने लम्बे वस्त्र की जेब में हाथ डाला और एक छोटी-सी सफ़ेद हड्डी का टुकड़ा निकाल कर बोला, "मुझे इस हड्डी के वजन के बराबर सोना दे दिया जाए महाराज, मुझे और कुछ नहीं चाहिये।"

महाराज ने हड्डी को देखा—नाखून से बड़ी वह हड्डी न थी—और उसे देख कर अकस्मात् हंसने लगे।

"वृद्धावस्था में लोग पागल हो जाते हैं। इस हड्डी के तुल्य तो एक रत्ती-भर सोना भी न आएगा, वृद्ध ! और कुछ माँगो।"

"मेरे लिये आपके हाथ का दिया हुआ कण-भर सोना भी निधि के समान होगा, महाराज।"

महाराज ने हंसते हुए तराजू मगवाने का आदेश दिया, और पास पड़े हुए चाँदी के थाल में से दो स्वर्ण-मुद्राएँ उठा कर बूढे की ओर फेंक दीं .

"इनके साथ हड्डी को तोल लो वृद्ध।"

तराजू आई। एक पलडे में हड्डी का टुकडा रखा गया, और दूसरे में मुद्राएँ। पर जब मन्त्री ने तोला तो हड्डी का टुकडा भारी निकला। महाराज लज्जित हुए, और फ़ौरन ही दो मुद्राएँ और निकाल कर तुला में डाल दीं। याचक की प्रार्थना भले ही छोटी हो, पर दानी के दान मे उदारता होनी चाहिए।

पर हड्डी का पलड़ा फिर भी भारी निकला।

महाराज हैरान हुए, और तुला में से हड्डी को निकाल कर देखने लगे। फिर उत्तेजित हाथों से चाँदी के थाल में से एक साथ मुट्ठी भर मुद्राएँ उठा कर तुला में डाल दीं, और तुला को अपने हाथ में लेकर स्वयं तोलने लगे।

पर पहले की तरह हड्डी का पलड़ा अब भी भारी निकला!

सब दरबारी चकित होकर तुला के पास आ गये। महाराज विस्मय से हड्डी को देख रहे थे मौका देखकर वृद्ध ने हाथ बाँध कर कहा :

"महाराज, मैं अपनी हड्डी को वापिस लेता हूँ। शायद आपके पास इसके बराबर सोना दान के लिये नहीं है।"

महाराज इस अपमान को सहन न कर सके। एक बड़ी तुला मंगवाई गई, और उसके एक पलड़े में यह तुच्छ-सी हड्डी और दूसरे में चमकती मुद्राओं से भरा सारा-का-सारा थाल उँडेल दिया गया।



एक बड़ी तुला मंगवाई गई, और उसके एक पलड़े में यह तुच्छ-सी हड्डी और दूसरे में चमकती मुद्राओं से भरा सारा-का-सारा थाल उँडेल दिया गया

पर हड्डी का टुकड़ा ज्यों-का-त्यों भारी निकला!

"यह जादू की हड्डी है, वृद्ध, तुम मेरा अपमान करने आए हो।"

महाराज की आँखें दम्भ और क्रोध से लाल हो उठीं। न वह हड्डी को बाहर फेंक सकते थे, न ही उसके बराबर सोना जुटा सकते थे।

इससे भी बड़ी तुला मंगवाई गई। मुद्राओं के स्थान पर सोने की ईंटें रख दी गई, पर नन्हीं-सी सफेद हड्डी फिर भी भारी निकली।

एक पागल जुआरी की तरह महाराज इस तुला पर अपनी स्वर्ण-राशि लुटाने लगे। दरबारी चित्रवत् खड़े इस व्यापार को देख रहे थे। महाराज के माथे पर पसीने के बिन्दु नजर आने लगे।

वृद्ध धीरे-धीरे मुस्काने लगा, फिर हाथ बाँध कर बोला :

"महाराज उदयगिरि, आपका राज्य बहुत बड़ा है, पर आपके राज्य की धनराशि तो क्या, संसार भर के राज्यों में इसकी तुलना का सोना न मिल सकेगा।"

महाराज का सीना फूला हुआ था। वह नजर उठा कर बोले

"क्या कहा वृद्ध! संसार भर का सोना इस हड्डी की तुलना नहीं कर सकता?"

"हाँ महाराज ! संसार के सात सिन्धुओं का पानी भी यदि सोना बन जाए तो इस हड्डी की प्यास को नहीं बुझा पाएगा ।"

महाराज चुप हो गये, और एकटक वृद्ध के चेहरे की ओर देखने लगे। फिर धीरे से बोले

"क्या बात है, वृद्ध ? इस हड्डी का क्या भेद है ?"

"यह कामना की हड्डी है, महाराज ! इसकी प्यास सदा बढ़ती है, कभी बुझती नहीं ।"

महाराज विस्मय मे आ गये। उनकी गम्भीर मुद्रा पर आवेश, पराजय और नम्रता के भाव नज़र आने लगे। उनकी आंखें वृद्ध के चेहरे पर से हट कर अनोखी हड्डी पर आ गई।

"तो क्या वृद्ध, ससार भर की सम्पत्ति इस हड्डी से हल्की ही रहेगी ?"

"हाँ महाराज !" वृद्ध ने कहा। फिर धीरे से बोला—

"यह मछुओं का छोटा-सा देश तो इसके पलडे को छू तक न पाएगा महाराज ।"

"तो वृद्ध, क्या इस हड्डी की तुलना संसार की कोई भी वस्तु नहीं कर पाएगी ?"

वृद्ध मुस्काया, फिर उसने धीरे से अपने पास खड़े हुए एक सैनिक के हाथ में से उसकी कटार ले ली और दूसरे ही क्षण अपने हाथ को जख्मी कर लिया।

"यह तुमने क्या किया, वृद्ध ? अपना हाथ काट लिया ?" महाराज ने हैरान होकर पूछा।

वृद्ध ने अपने जखमी हाथ पर से टपकते लहू की एक बूँद तुला में डाल दी। देखते ही-देखते हड्डी का पलडा ऊँचा उठने लगा, यहाँ तक कि खून की बूँद का पलड़ा बोझल हो गया।

"महाराज उदयगिरि, मेरा रक्त तो बूढा हो चुका है, उसमें कोई स्पन्दन नहीं, पर एक युवक या एक बच्चे के खून का तो स्पर्शमात्र भी भारी होगा।"

महाराज विचलित हो उठे और चुपचाप शिविर में से बाहर निकल कर झील के सामने आ खड़े हुए। वाण की वर्षा अब भी उसी वेग से चल रही थी, और झील का पानी अब भी लाल हो रहा था। झील के सामने खडे महाराज, बड़ी देर तक कभी हड्डी को देखते, कभी झील के रक्त-रञ्जित पानी को देखते ।

कहते हैं, दूसरे दिन प्रात. जब दुन्दुभि बजने का समय हुआ तो मछुओं ने देखा कि महाराज उदयगिरि की सेनाएँ वापिस लौट रही हैं, और वनों से भागे हुए पशु पक्षी फिर से धीरे-धीरे अपने गारों और घोंसलों को लौटने लगे हैं।





बलराम ने मूर्ति की पूजा की फूल चढ़ाये और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा

कर्म-चक्र

युधिष्ठिर कुमार

मध्य भारत की लोककथा

प्राचीन काल की बात है, बहुत पुरानी, एक बार लक्ष्मी और सरस्वती में विवाद छिड़ गया। लक्ष्मी बोली, "मेरे आशीर्वाद के आगे भला कर्मों की क्या हस्ती है?" परन्तु सरस्वती अपनी बात पर अड़ी थी कि हर एक को पिछले कर्मों का फल भोगना पड़ता है। दोनों में बहस छिड़ गई और अन्त में लक्ष्मी ने कहा—"हम दोनों चल कर लक्ष्मी के मन्दिर में मूर्ति के पीछे छिप जायें। वहाँ जो कोई भी धन की इच्छा लेकर सबसे पहले आयेगा, उसको मैं अपनी इच्छानुसार धन दूँगी फिर देखूँगी कि कर्म किस प्रकार उसे सुखी होने से रोकेंगे।" सरस्वती ने कहा—"ठीक है और आपको एक नहीं तीन मौके मिलेंगे।"

दोनों मन्दिर में जाकर लक्ष्मी की मूर्ति के पीछे छिप गईं।

मन्दिर के पास ही अम्बर नाम का एक गाँव था। उसमें बलराम नामक एक लकड़हारा अत्यन्त गरीबी में अपने दिन काट रहा था। उसकी पत्नी का नाम सुनीति था। उसके एक पुत्र और एक पुत्री भी थी। वह प्रतिदिन लकड़ी काटना अथवा पत्तियाँ

के काम करके अपना पेट पालता, परन्तु तीन रोज से लगातार वर्षा हो रही थी, जिसके कारण वह घर से काम करने को न जा सका तथा घर में अन्न का एक दाना भी न था। बालक भूख से व्याकुल थे और माता-पिता विवश थे। दिन निकलते ही वर्षा रुकी और सुनीति ने कह सुन कर बलराम को काम की खोज में भेजा। बलराम ने बन में लकड़ी काटी और फूल जमा किये। फिर कुछ फूल लेकर वह लक्ष्मी के मन्दिर की ओर चला। बलराम अत्यन्त भाग्यवान था, क्योंकि वही पहला मनुष्य था, जोकि उस मन्दिर में सबसे पहले पहुँचा जिसमें दोनों देवियाँ छिपी बैठी थीं। बलराम ने मूर्ति की पूजा की, फूल चढ़ाये और धन के लिए हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा। देवी लक्ष्मी ने उपयुक्त अवसर देखकर मोहरों की वर्षा कर दी। बलराम आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था कि क्या यह सत्य है! अथवा स्वप्न? बड़ी देर में उसे विश्वास हुआ कि देवी लक्ष्मी वास्तव में उस पर प्रसन्न हो गई हैं।

मन्दिर के कोने में मिट्टी की एक हड़िया रखी थी। सब मोहरें उसमें भर कर आनन्द से उछलता हुआ वह अपने घर पहुँचा। बाहर से ही उसने अपनी पत्नी को आवाजें देनी शुरू कीं कि देखो सुनीति मैं क्या लाया हूँ, परन्तु वह अपनी किसी पड़ोसिन से आटा उधार माँगने गई हुई थी वह उसे ढूँढ़ने को बाहर चल दिया। थोड़ी देर में दोनों पति-पत्नी वापिस आ गये। बलराम तो खुशी-खुशी सब बता रहा था, परन्तु सुनीति उस पर विश्वास नहीं कर रही थी। घर में आकर दोनों ने देखा कि हड़िया भर अशर्फियाँ तो कहाँ, एक भी अशर्फी नहीं है। बलराम कटे पेड़ की भाँति गिर पड़ा और सुनीति उसे गालियाँ सुनाने लगी। अब वह बोलता भी क्या? चुप पड़ा रहा। अगले दिन प्रातःकाल वह फिर देवी के मन्दिर पहुँचा। लक्ष्मी सोच रही थी कि बलराम अब धनी हो गया है। अतएव बहुत सारी सामग्री लाकर पूजा करेगा। परन्तु बलराम ने रो-रो कर सारी कथा सुनाई। अब की बार देवी लक्ष्मी ने अपने गले का मणिमुक्ताओं का हार उसके ऊपर फेंक दिया। वह अत्यन्त खुश होकर वहाँ से चल दिया। रास्ते में उसे ध्यान आया कि कल उसने धन मिलने पर निर्मल जल में स्नान करके पूजा नहीं की थी, शायद इसीलिए उसका कलवाला धन खो गया।

यह सोचते ही वह सरोवर पर जा पहुँचा और हार को कुर्ते की जेब में भलीभाँति बाँध कर कपड़े जल के किनारे रख दिये और नहाने को घुस गया। जब वह सूर्य की ओर मुँह करके उसे जल दे रहा था, कपड़ों की ओर उसकी कमर थी। हार जरा-सा जेब में से चमक रहा था। मछली उसे कोई खाद्य वस्तु समझ चट से निगल गई। इधर बलराम स्नान से निवृत्त होकर आया तो हार को गायब देख कर रोने लगा। सब जगह उसने हार ढूँढा पर वहाँ हार कहाँ। घर पहुँच कर उसने रोते-रोते अपनी पत्नी को सब हाल सुनाया, परन्तु उसने विश्वास करने के बजाय और उसे चार बातें सुना दीं।

अगले दिन बलराम फिर देवी के मन्दिर देर से पहुँचा। लक्ष्मी सरस्वती से कह रही थी—"देखो आज बलराम नहीं आयेगा। अब वह अमीर हो गया है। यह मनुष्य बड़े कृतघ्न होते हैं।"

परन्तु कुछ ही क्षण पश्चात् बलराम रोता हुआ आ पहुँचा और आकर सब हाल

सुनाने लगा। देवी लक्ष्मी देवी सरस्वती से कहने लगी—"यह मनुष्य बड़ा मूर्ख मालूम देता है।"

सरस्वती बोली—"मूर्ख नहीं है। इसके बुरे कर्मों का चक्र अभी समाप्त नहीं हुआ है।"

लक्ष्मी चिढ़ कर बोली "फिर वही कर्म-चक्र। अच्छा अब के मैं इसको बड़ा कीमती एक छोटा-सा पत्थर दूँगी, देखूँ इसे कौन लेता है।" ऐसा कह कर उन्होंने एक छोटा मूल्यवान पत्थर उसके आगे फेंक दिया। बलराम ने उसे तुरन्त उठा लिया और आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। अब वह उसे मुट्ठी मे दबाये घर की ओर भागा। उसे सुनीति के पास पहुँचने की जल्दी थी। आधे रास्ते आकर वह मुट्ठी खोल कर देखने लगा कि कहीं अमूल्य पत्थर हाथ मे से गायब तो नहीं हो गया। पत्थर लाल-लाल चमकते देख कर एक चील उसे खाने की वस्तु समझ कर उससे एक ही झपाटे से छीन कर ले गई। अब तो बलराम सर पीट कर रह गया। उसने घर जाकर अपनी पत्नी को कुछ न बताया



उधर सुनीति ने जब मछली काटी तो उसके पेट में से वह लाल निकला था।
यह देखकर दोनों चकित रह गये क्योंकि उनकी तीनों चीजें मिल चुकी थीं।

और चुपचाप जाकर लेट गया। उसे ऐसा लेटा देख कर सुनीति का हृदय भर आया, तथा वह उसे खोये हुए धन के लिए सान्त्वना देने लगी। अगले दिन वह मन्दिर न जाकर मजदूरी करने को चला गया। क्योंकि सुनीति की ऐसी ही इच्छा थी।

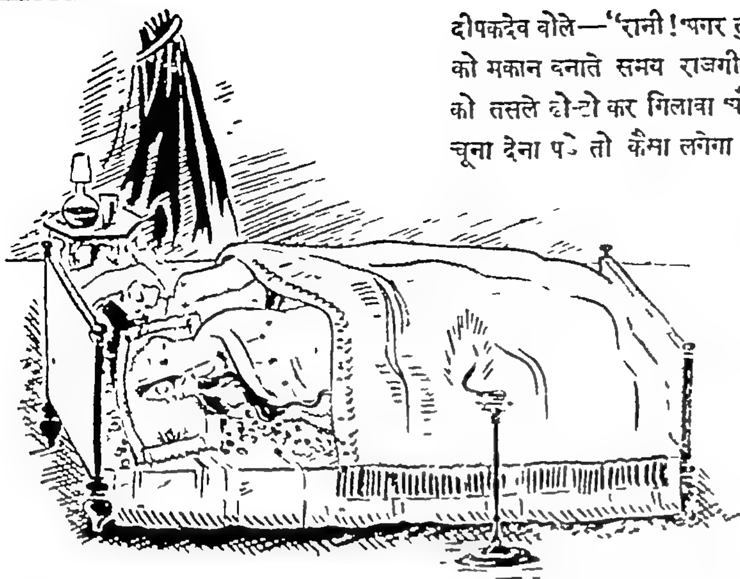
उधर मन्दिर में देवी लक्ष्मी कहने लगी—"अब बलराम जरूर लखपती हो गया होगा। भला वह अब यहाँ क्यों आयेगा।" परन्तु सरस्वती बोली "नहीं बहिन ऐसा नहीं हुआ। वह अभी उतना ही गरीब है और शाम को उसके बुरे कर्मों का प्रभाव समाप्त होगा, तब वह अवश्य ही लखपती बनेगा।"

शाम को बलराम को आठ आने मिले। उससे वह आटा, नमक, तेल तथा मछली आदि खरीद कर घर चला। उसकी पत्नी तथा बच्चे यह सब देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। पत्नी ने घर में जाकर भोजन की तैयारी शुरू की और वह कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी लेने चला। भाग्यवश वह उसी कीकर की डालों को काटने लगा जिसमें उस चील का घोंसला था तथा वह मूल्यवान पत्थर उसमें रखा था। उसको देखते ही वह खुशी के मारे लकड़ी और कुल्हाड़ी सब छोड कर भागा घर की ओर। वह कहता जा रहा था, "सुनीति, चोर मिल गया! चोर मिल गया!"

उधर सुनीति ने जब मछली काटी तो उसके पेट में से वह हार निकल पड़ा। वह उसे दिखाने को बाहर लेकर भागी। वह भी कहती जा रही थी, "चोर मिल गया! चोर मिल गया!"

यह शोर सुन कर पड़ोस की कुबड़ी बुढिया घबरा गई, क्योंकि उसी ने पहले दिन वह मोहरों से भरी हंडिया चुराई थी। वह समझी शायद उसी की चोरी पकडी गई है, और अब उसी के घर वह उसे पकड़ने आ रहे हैं। वह चुपके से उस हडिया को उसी कोने में रख आई। घर आकर दोनों चकित रह गये क्योंकि उनकी तीनों चीजें मिल चुकी थीं। अब वह लखपती क्या करोड़पती बन गये, तथा सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे।





दीपकदेव बोले—"रानी! अगर तुम को मकान बनाते समय राजगीरों को तसले ढो-ढो कर गिलावा और चूना देना पड़े तो कैसा लगेगा?"

फूलों की सेज

भगवानचन्द्र गुप्त

एक नगर में एक राजा राज्य करता था। राजा की एक रानी थी। उस रानी को कपड़े और गहनों का बहुत अधिक शौक था। उसे कभी सोने का कर्णफूल चाहिए, कभी हीरे का हार तो कभी मोतियों की माला। कपड़ों की तो बात मत पूछिए। भागलपुरी टसर और ढाके की मलमल और रात को सोने के लिए फूलों की सेज। फूल भी खिले नहीं, वरन् अधखिली कलियाँ जो रात भर में धीरे-धीरे खिलें। रोज नौकर अधखिली कलियाँ चुन-चुन कर लाते, और दासी सेज लगाती। सो संयोग से एक दिन अधखिली कलियों के साथ कुछ खिली कलियाँ भी सेज पर आ गईं। अब तो रानी को भारी बेचैनी हुई।

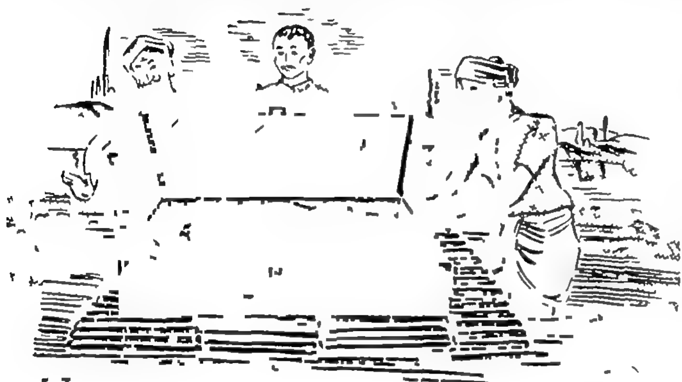
रानी को नींद कहाँ? खिली कलियाँ जो गड़ रही थीं। दीपकदेव अपना प्रकाश फैला रहे थे। उनसे न रहा गया और वे बोले—"रानी! अगर तुमको मकान बनाते समय, राजगीरों को तसले ढो-ढो कर गिलावा और चूना देना पड़े तो कैसा लगेगा? क्या तसलों का ढोना इन कलियों से भी अधिक अखरेगा?" रानी ने सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। वह अवाक हो गई। परन्तु तब तक राजा जाग गये थे और उन्होंने सारी बातें सुन लीं।

राजा ने रानी से सवाल किया—"दीपकदेव के सवाल को आजमाइश करके देखो न? उनकी आज्ञा को तोड़ना अच्छा नहीं।" रानी राजी हो गई। राजा ने काठ का एक कटघरा बनवाया। उसमें रानी को बन्द करवा दिया और पास बहने वाली नदी में बहा दिया। वह कटघरा बहते-बहते एक दूसरे रजवाड़े के किनारे जा लगा। वह राजा के बहनोई के राज्य में था। घटवारों ने कटघरे को पकड़ कर किनारे लगाया। खोला तो उसमें एक सुन्दरी निकली। रानी का जेवर और कीमती वस्त्र पहले ही खोल लिया गया था। वह साधारण मोटे, फटे चीथड़े कपड़े पहने हुए थी। पर सुन्दरता साथ थी। राजा उसको नहीं पहचान सका और न रानी ने ही अपना सही पता-निशान दिया, क्योंकि दीपकदेव की बात की परीक्षा जो लेनी थी। राजा का एक नया महल बन रहा था। सो राजा को मजदूरों की जरूरत थी। राजा ने पूछा—"तुम क्या चाहती हो?"

रानी ने अपनी अभिलाषा प्रकट करते हुए कहा—"मकान बनाने में तसला ढोने का काम।"

राजा ने उस रानी को तसला ढोने के काम पर बहाल किया। रानी दिन भर तसला ढोती और मजदूरी के थोड़े पैसों से अपना जीवन-निर्वाह करती। दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद जो रूखा-सूखा भोजन मिलता वह बड़ा ही मधुर और स्वादिष्ट लगता और रात भर खुरदरी चटाई पर खर्राटे ले-ले कर रानी खूब सोती। मुँह अँधेरे उठ जाती और नित्य-क्रिया से निवृत्त हो मन में उमग और उत्साह के साथ अपने काम में जुट जाती।

इसी प्रकार रानी को काम करते-करते बहुत दिन बीत गये। एक बार रानी का राजा (पति) अपने बहनोई के यहाँ किसी काम से आया, विशेषकर दिल बहलाने के ख्याल से। क्योंकि बिना रानी के राजा क्या? अकेले राज-काज में उसका मन नहीं लगता था। सो राजा ने रानी को वहाँ अनायास देख लिया। देखते ही राजा रानी को पहिचान गये। हाँ, मेहनत मजदूरी करने से रानी कुछ साँवली सलोनी-सी हो गई थी और कुछ हृष्ट-पुष्ट भी। रानी भी राजा को पहिचान गई।



घटवारों ने कटहरे को पकड़ कर किनारे लगाया। खोला तो उसमें एक सुन्दरी निकली।

फिर राजा ने पूछ ही तो लिया—"कहो, तसलों का ढोना कैसा लग रहा है?"

रानी मुस्कराती हुई बोली—कलियाँ गड़ती थीं, परन्तु तसले नहीं गडते।"

राजा के बहनोई दोनों के वार्तालाप को सुन कर विस्मित हुए। उन्होंने रहस्य जानना चाहा। राजा ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा बहनोई सुन कर मुग्ध हो गया। उसने रानी को कार्यभार से मुक्ति दे दी और आराम से रहने, खाने-पीने का इन्तजाम कर दिया।

कुछ दिनों के बाद रानी से राजा ने पूछा—"कहो, अब कैसा लगता है?"

रानी ने कहा—"वह आनन्द कहाँ? आलस्य अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता है। डर लगता है कि कहीं कलियाँ फिर से गड़ने न लग जायें।"

राजा ने अपनी राय प्रकट की—"तो, एक काम करो। हम दोनों मिलकर दिन भर मजदूरी किया करें और रात को कलियों की सेज पर सोयें।"

रानी ने अपना अनुभव बतलाया—"तो, फिर कलियों की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जायगी। यों ही बेहिसाब नींद आ जाया करेगी।"



टमरक-टूँ

अक्षयचन्द्र शर्मा



भूरिया ने कमेड़ी के पैरों को कस कर बाधा और उसे उलटा लटका दिया, और कहने लगा—"ओ, परिन्दे ! अब उड़ !"

भरपूर चौमासे के दिन। खेतों की बात मत पूछो ! बाजरी की हरी बालें, उनमें दूधिया दाने और उन पर सुनहरी कूँ-कूँ, जैसे मोतियों पर किसी ने सोने का पानी चढ़ा दिया है। मतीरे की हरी-हरी वेलों के नाल दूर-दूर पसरे हुए थे। नंग-धड़ंग रहनेवाली सुनहरी बालू ने अभी अपने ऊपर जैसे हरित-वर्ण का झीना अञ्चल डाल लिया हो।

और भूरिये किसान का खेत तो सब से बाजी मार ले गया। बाजरी के एक-एक बूँटे में दस-दस बालें। भूरिया दिन भर नाचता-गाता खेत में काम करता। एक कमेड़ी* ने भूरिये के खेत को देखा। उसका मन ललचा गया। वह रोज सवेरे चुगा-पानी करने भूरिये के खेत पर पहुँच जाती, फुर-फुर उड़ कर बाजरी पर बैठती, दाने चुगती और उड़ जाती। भूरिया पींपा बजा कर चिड़ियों को उड़ाता।

एक दिन भूरिये ने कमेड़ी से कहा—"तू मेरे खेत में मत आया कर, नहीं तो मैं तुझको पकड़ लूँगा।"

कमेड़ी ने कहा—"खेत तेरा अकेले का नहीं। मेरी माँ, मेरी दादी, मेरी पड़दादी यहीं दाने चुगती थीं। तू मुझे पकड़ेगा ? मैं फुर-फुर उड़ने वाला परिन्दा ! मेरी माँ कहती थी, आदमी हेकड़ी का पुतला है ! आज बात सच निकली।"

भूरिया चुप रहा। दूसरे दिन भूरिया ने एक कुबध रची। खेजड़ी पर एक फन्दा डाला। कमेड़ी उड़ती-उड़ती खेजड़ी पर बैठने आई और उसके पैर उलझ गये। भूरिया ताक में बैठा था, दौड़ा-दौड़ा आया। भूरिया ने कमेड़ी के पैरों को कस कर बांधा और उसे उलटा लटका दिया, और कहने लगा—"ओ, परिन्दे ! अब उड़ !!"

कमेड़ी बेचारी चुप ! वह कुछ नहीं बोली। वह जानती थी, भूरिये का दिल पत्थर है, वह दाद-फरियाद से पिघलने वाला नहीं। चोंच को थोड़ा तिरछा कर केवल उसने भूरिये को देखा, और भूरिया कहता गया—"ओ, परिन्दे ! अब उड़ !!"

गायों का एक ग्वाला खेत की डगरी के पास से निकला। एक हाथ में लाठी और दूसरे में अलगोजा। गायों का झुण्ड पास ही चर रहा था। कमेड़ी ने रोते-रोते कहना शुरू किया :

गायों का गिवाल्य रे वीर टमरक-टूँ।
बंधी कमेड़ी छुड़ाई म्हारा वीर ! टमरक-टूँ।

---

*कबूतर की जाति का एक मटमैले रंग का पक्षी, जिसको पिण्डुकी या पिडुकी भी कहते हैं।

डूँगर लारै बच्चा रे वीर ! टमरक-टूँ ।
लोड़ा-लोडा बच्चा रे वीर ! टमरक-टूँ ।
ऑधी सूँ उड़ जासी रे वीर ! टमरक-टूँ ।
मेहाँ सूँ गल जासी रे वीर ! टमरक-टूँ ।
लुँ ऑ सूँ बल जासी रे वीर ! टमरक-टूँ ।

—'हे गायों के ग्वाले, हे मेरे भाई !
बँधी कमेड़ी को छुडाओ न भाई !
मेरे बच्चे पहाड़ी के पीछे हैं ।
मेरे बच्चे छोटे-छोटे हैं ।
वे ऑधी से उड़ जावेंगे ।
मेह से गल जावेंगे ।
लू से जल जावेंगे ।'

कमेडी की आवाज में बेहद दु ख था, दर्द था । उसका दिल रो रहा था, तडप रहा था । ग्वाला रुका, उसने खेजडी पर बँधी कमेडी को देखा । ग्वाले की ऑखो में मोती की तरह बड़े-बड़े आसू भर आये । वह बेचारा क्या करता । भूरिया से वह डरता था । भूरिया लड़ाईखोर, सोते नाग को कौन छेडे ? ग्वाले न भूरिये से कहा—"भाई, भूरिया ! मेरी एक अच्छी दूध वाली गाय ले लो और इस कमेड़ी को छोड़ दो ।"

लेकिन भूरिये ने कहा—"ना, भाई, ना !' ग्वाला वेचारा चलता वना ।

इतने में ऊँटों का राइका (ऊँट चराने वाला) उधर से निकला । उसे सम्बोधन करके कमेडी ने फिर वही गीत गाया ।

राइका ने भूरिये से कहा—"भाई ! एक अच्छा सा ऊँट मेरे टोले (झुण्ड) से ले लो और इस कमेड़ी को छोड़ दो ।"

भूरिये ने कहा—"ना, भाई, ना !" राइका बेचारा चलता बना ।

इसी प्रकार बकरी-भेड को चरानवाला निकला । पर भूरिया टस से मस नहीं हुआ । इतने मे ऊँदर (चूहा) बिल से निकला । ऊँदर ने कमेड़ी को आवाज लगाते हुए कहा—

"कमेड़ी बाई, नीचे आओ !
धूल मे खेलो, गीत सुनाओ ।"

पर कमेड़ी ने रोते-रोते कहा—"ऊँदर भैया ! देखते नहीं । भूरिया ने मुझे बॉध दिया है । मैं तो अब मर कर ही नीचे आऊँगी । मैं अब कभी नहीं गा सकूँगी । कभी नहीं खेल सकूँगी । मेरे छोटे-छोटे बच्चे, पहाड़ी के पीछे "

कहते-कहते कमेड़ी का गला भर आया । ऊँदर पूरा बाहर निकल देखने लगा । उसने मूँछों को हिलाते हुए कहा—"डरना मत, कमेड़ी बहिन ! भूरिये का फन्दा तो क्या एक बार मौत के फन्दे से भी मैं तुम्हें छुड़ा सकूँगा ।"

इतने में भूरिया आता दिखाई दिया ऊँदर ने भूरिये से कहा—"भूरिया ! ओ, भूरिया ! मेरे पास जमीन में सोने का खजाना है। तुम कमेड़ी को छोड़ दो तो मैं तुम्हें निहाल कर दूँगा। तुम्हारा घर सोने से भर दूँगा।" भूरिया सोने का नाम सुन कर राजी हो गया। कहने लगा—"ऊँदर राज ! तुम जमीन के राजा हो, तुम्हारी बात नहीं मानूँगा तो किसकी मानूँगा ?" इतना कह कर भूरिया ने कमेड़ी की टाँगें खोल दीं। कमेड़ी फुर-फुर कर उड़ गई।

ऊँदर बिल में घुसते हुए कहने लगा—"सच, आदमी लालची भी है—टमरक-टूँ !"



संतरी बोला भाई तुम्हें इन बातों से क्या लेना है ? अपना काम-धन्धा देखो।"

उत्तर प्रदेश की लोक कथा

संतरे की राजकुमारी

शिवनयना मेहता

किसी देश में एक बहुत बड़ा जगल था। उस जगल के बीचों-बीच एक सतरे का पेड़ था। उस पेड़ के नीचे एक सतरी पहरा दिया करता था। एक दिन दो शिकारी राजकुमार शिकार करते हुए उधर आ निकले। सतरे के पेड़ के नीचे खड़े उस संतरी को देख उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ। कुछ देर तो वह दूर से खडे उस सतरी की ओर देखते रहे, पर वह कुछ समझ न सके। फिर परस्पर कुछ सलाह करके वह आगे बढ़े और संतरी के निकट जा कर पूछा—"संतरी जी आप क्यों उस सतरे के पेड़ के नीचे पहरा दे रहे हो ?

सतरी यह सुन हँस पडा और फिर कुछ देर बाद बोला—"भाई तुम्हें इन बातों से क्या लेना है ? अपना काम-धन्धा देखो।"

यह सुन शिकारी और भी हैरान हुए और सोचने लगे कि 'ऐसी क्या बात है जो संतरी बताना नहीं चाहता।' उन्होंने फिर आग्रह से पूछा—"संतरी जी, हम तुम्हारे यहाँ पहरा देने का कारण जाने बिना यहाँ से नहीं जायेंगे।"

संतरी बोला, "कारण बताने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर हाँ, तुम्हें जान कर केवल दु:ख के और कुछ न प्राप्त होगा, इसीलिए मैं नहीं बताना चाहता।"

बड़ा राजकुमार बोला, "हम किसी प्रकार के दु:ख अथवा संकट से नहीं घबराते; हम हर प्रकार के संकट का मुकाबला करेंगे और दु:ख भोगने को तैयार हैं।"

छोटा राजकुमार अपने बड़े भाई से बोला, "भैया, चलो घर चलें, न जाने क्या मुसीबत आ जाएगी। यहाँ जंगल में तो कोई सहायक भी नहीं मिलेगा।"

बड़ा भाई—"डरने की क्या बात है। हम तो राजपूत हैं। यदि तुम्हें डर लगता है तो तुम सहर्ष घर लौट जाओ। मैं तो सारी बात की खोज करके ही चैन लूंगा।"

छोटा भाई—"ना भई, मैं तुम्हें यहाँ अकेला छोड़ कर नहीं जाऊँगा। अकेले मैं पिता जी को क्या मुँह दिखाऊँगा; जैसा तुम कहो वैसे ही मैं करूँगा।"

संतरी बोला, "तो तुम लोग नहीं मानोगे कारण जाने बगैर। अच्छा, तो जैसे भगवान् की इच्छा। लो, बैठ जाओ उस पत्थर पर और ध्यान से सुनो।" इतना कह, वह संतरी भी वहीं एक पत्थर पर बैठ गया और कुछ देर सोच कर सिर खुजलाते हुए उसने कहना आरम्भ किया—

"इस संतरे के पेड़ का तना खोखला है। इसमें उतर कर अन्दर बड़ा सुन्दर, हीरे-जवाहरात से चमकता हुआ एक महल है जिसमें एक राजकुमारी रहती है। उस राजकुमारी के बराबर की सुन्दरी इस संसार में और कोई दूसरी नहीं है। वह राजकुमारी महीने में एक बार अपनी सखियों के साथ बाहर जंगल में घूमने निकलती है। पूर्णमासी की अर्द्धरात्रि को यहाँ जंगल में मंगल हो जाता है। बस, सवेरा होने से पहले ही राजकुमारी और उसकी मंडली वापस अपने महल में चली जाती है। मैं यहाँ उसी राजकुमारी के महल की रखवाली करता हूँ। इस तने के भीतर महल के चारों ओर और भी पहरेदार हैं। यहाँ अनेक राजकुमार आ चुके हैं और राजकुमारी से विवाह करने की इच्छा मन में लिए हुए ही मौत के मुँह में चले गए हैं। उनकी दशा देखकर मुझे बहुत दया आती थी, पर वह भी तुम्हारी तरह जिद्दी थे। मेरे लाख मना करने पर भी वह नहीं माने।"

बड़ा शिकारी बोला, "भाई संतरी, मैं भी इस राजकुमारी को देखना अवश्य चाहता हूँ; भला ऐसी भी क्या बात है जो इतने लोग इसके पीछे अपने प्राणों से हाथ धो बैठे हैं।"

संतरी ने बहुत समझाया-बुझाया, पर जब वह नहीं माने तो उसने कहा, "अच्छा, पूर्णमासी की रात्रि को यहाँ आकर किसी झाड़ी में छुप कर बैठ जाना। जब अर्द्धरात्रि को राजकुमारी और उसकी सखियाँ बाहर निकलें तो उसे देख लेना। परन्तु याद रखना कि बिलकुल चुपचाप बैठना होगा, जरा भी आवाज आने पर खैर न होगी।" संतरी की बात सुन दोनों शिकारी राजकुमार अति प्रसन्न हुए, और पूर्णमासी की रात्रि को फिर से वहाँ आने की ठान वहाँ से अपने घर लौट गए।

जैसे-तैसे पूर्णमासी की प्रतीक्षा की और समय आने पर अपने पिता की आज्ञा ले दोनों राजकुमार शिकार को चल दिये। जंगल में पहुँच कर दिन भर विश्राम किया और रात्रि पड़ने पर संतरे के पेड़ के निकट एक झाड़ी में जा छुपे। आधी रात होने पर तने की खोल में थोड़ा प्रकाश दिखाई दिया। फिर एक अत्यन्त सुन्दर लड़की धीरे से बाहर निकली

और चारों ओर देख कर घुस गई। पाँच-दस मिनट के बाद आठ-दस लड़कियाँ बाहर निकलीं। सब की सब बड़ी सुन्दर थीं। फिर राजकुमारी धीरे-धीरे बाहर आई। उसके बाहर आते ही चन्द्रमा ने भी अपना मुख एक बादल की टुकडी में छुपा लिया। राजकुमारी की सुन्दरता देख दोनों राजकुमार होश खो बैठे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे एक अद्भुत स्वप्न देख रहे हों।

राजकुमारी और उसकी सखियाँ बड़ी देर तक वहाँ गाती-बजाती, नाचती और आँखमिचौनी खेलती रहीं, फिर घूम-फिर कर सवेरा होने से पहले ही सब वापस अपने महल में चली गईं। बड़े राजकुमार ने उनका पीछा करना चाहा, पर छोटे राजकुमार ने ज्यों-त्यों उसे रोक लिया। प्रात सतरी को देखते ही बडे राजकुमार ने राजकुमारी के महल में जाने की इच्छा प्रकट की, पर सतरी ने सिर हिला दिया और कहा—

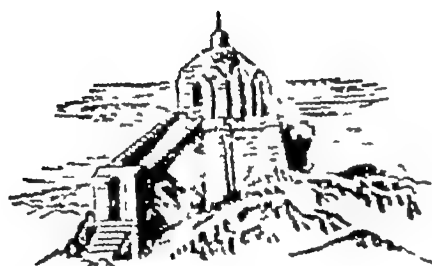
"वहाँ पहुँचना असम्भव है राजकुमारी के ऊपर किसी ने जादू किया है, इसलिए उसके पास कोई नहीं जा सकता। हाँ, एक विधि है, जो कोई इस सतरे के पेड़ पर से दो फूल ला सकेगा वही व्यक्ति राजकुमारी के महल में जा सकेगा। परन्तु सतरे के पेड़ को छूना मना है और जमीन पर पडे फूल हाथ उठाने से भी काम नहीं चलेगा। पेड़ पर लगे फूल हाथ से तोड़ना भी मना है। अब सोच लो, अगले महीने इस पेड पर फूल आएंगे।

सुनकर दोनों राजकुमार घर चले गए।

फिर राजकुमारी धीरे धीरे बाहर आई। उसके बाहर आते ही चन्द्रमा ने भी अपना मुख एक बादल की टुकडी में छुपा लिया।



अगले महीने, दोनों राजकुमार शिकार का बहाना बना कर फिर उसी जंगल में पहुँचे। वे बड़े असमंजस में थे कि हाथ लगाए बिना संतरे के पेड़ से फूल कैसे तोड़े जाएँ। तीन दिन और रात वे प्रयत्न करते रहे, पर फूल हाथ न लगे। रात को थक कर उसी पेड़ के नीचे सो जाते बिचारे। चौथे दिन बड़े वेग से हवा चलने लगी और पेड़ पर से फूल ज़मीन पर गिरने लगे। यह देख बड़ा राजकुमार उठा और उसने दो फूल ज़मीन पर गिरने से पहले ही पकड़ लिए। एक फूल छोटे राजकुमार के हाथ भी लग गया। सतरी ने बड़े आदर-प्रेम से उन्हें नीचे महल में पहुंचा दिया। वहाँ धूमधाम से बड़े राजकुमार का विवाह सतरे की राजकुमारी के साथ हो गया और छोटे राजकुमार का राजकुमारी की सबसे प्यारी सखी के साथ। दोनों राजकुमार अपनी-अपनी पत्नी को साथ ले अपने पिता को प्रणाम करने पहुँचे, और उनका आशीर्वाद लिया। सारी राजधानी में बड़ी खुशी मनाई गई। बड़ा राजकुमार तो पिता के साथ राज-काज सम्हालने लगा और छोटा राजकुमार सतरे के महल में रहने लगा।





लड़के ने फौरन कुछ नाशपातियां तोड़ीं, और कहा—"तुम मेरे हिस्से की सब नाशपातियां ले लो। मैं तुम्हें इससे अधिक नहीं दे सकता क्योंकि बाकी नाशपाती मेरे भाइयों की हैं।"

तराई की लोककथा

तीन भाई

मन्मथनाथ गुप्त

किसी गाँव में तीन भाई रहते थे। वे इतने गरीब थे कि उनके पास अपना कहने के लिए सिवाय एक नाशपाती के पेड़ के और कुछ नहीं था। वे जिस छोटी-सी झोंपड़ी में रहते थे, उसी के पास वह नाशपाती का पेड़ खड़ा था। उन्हें उस नाशपाती के पेड़ से बहुत प्रेम था। जब नाशपाती गदराने लगती थी, तो वे उस पर बारी-बारी से पहरा देते थे। एक न एक भाई हर समय नाशपाती के पेड़ के पास डटा रहता था। जिस समय एक भाई पहरे पर होता था, उस समय बाकी दो भाई खेतों में काम करने जाते थे। पर अधिक-से-अधिक काम करने पर भी वे किसी तरह अपना पेट न पाल पाते थे, यहाँ तक कि पहनने के लिए ढंग के कपड़े भी नहीं मिलते थे। एक दिन एक दयालु परी उस रास्ते से निकली। उसने देखा कि ये तीन लड़के कितने अच्छे हैं, फिर भी इनके पास खाने के लिए कोई अच्छी चीज नहीं है, ये बहुत गरीब हैं। इस पर परी के मन में दया आ गई, और वह सोचने लगी कि किसी प्रकार इन लडकों की सहायता करनी चाहिए।

बहुत सोचने पर उसके दिमाग में एक योजना आई। वह भेष बदल कर एक भिखमंगिन बन गई, और लगड़ाती हुई नाशपाती के पेड़ के पास पहुँची। जब वह वहाँ पहुँची, तो उस समय सबसे बड़ा भाई पेड़ पर पहरा दे रहा था। भिखमंगिन ने कहा—"मुझे कुछ नाशपाती मिल जायें।'

लड़के ने फौरन कुछ नाशपातियाँ तोड़ीं, और कहा—"तुम मेरे हिस्से की सब नाशपातियाँ ले लो। मैं तुम्हें इससे अधिक नहीं दे सकता क्योंकि बाकी नाशपाती मेरे भाइयों की हैं।"

बुढ़िया भिखमंगिन ने नाशपाती ले लीं, और बड़े भाई को आशीर्वाद देकर वहाँ से चली गई।

अगले दिन मंझला भाई पेड़ के पहरे पर था। दयालु परी भिखमंगिन के रूप में फिर आई, और उसने उसी प्रकार से कुछ नाशपाती माँगीं। मझले भाई ने अपने हिस्से की सारी नाशपातियाँ उस बुढ़िया को दे दीं। वह तो और भी देने के लिए तैयार था, पर छोटे भाई के हिस्से में वह हाथ लगाना उचित नहीं समझता था। उससे अगले दिन तीसरे भाई के पहरे की बारी आई। दयालु परी उसी प्रकार भिखमंगिन के भेष में आई, और उसने छोटे भाई से नाशपाती माँगीं। छोटे भाई ने बाकी सब नाशपातियाँ दे दीं, इस प्रकार पेड़ में एक भी नाशपाती न रह गई।

अगले दिन प्रातःकाल तीनों लड़के खेत पर जाने की तैयारी में व्यस्त थे कि इतने में वह दयालु परी अपने असली रूप में उनके जंगले पर उड़ कर बैठ गई और बोली—"लड़को, मैंने तुम में से हर एक की परीक्षा की, और मैंने यह देखा कि जहाँ तक दयालु होने की बात है तुम में से कोई किसी से कम नहीं। मैं तुम लोगों पर प्रसन्न हूँ। अब तुम लोग मेरे साथ आओ, और मैं तुम्हें यह बताऊँगी कि किस प्रकार तुम अच्छा खाना और कपड़े पा सकते हो?"

तीनों भाई उसके पीछे हो लिये। दयालु परी उन्हें एक जंगल में ले गई। उस जंगल में पेड़ इतने घने थे कि सूर्य की किरणें भी कभी जमीन पर नहीं पहुँच पाती थीं। परी उन्हें कभी पहाड़ पर चढ़ाती तो कभी घाटियों से ले जाती रही, और अन्त में वे एक बहुत बड़ी नदी के पास पहुँच गये, जो पहाड़ से उछलती-कूदती हुई मैदानों की ओर जा रही थी।

जब सब लोग वहाँ आ गये तो परी खड़ी हो गई और उसने बोलना शुरू किया। पर नदी के स्रोत से इतनी आवाज आ रही थी कि उसकी एक भी बात किसी को सुनाई नहीं पड़ी, और उसने हर एक के पास जाकर उसके कान में अपनी बात कही। बड़े लड़के से वह बोली—"यहाँ पर मैं तुम्हें जो तुम माँगोगे वह दूँगी। इसलिए कोई वर माँग लो।"

बड़ा भाई उस समय प्यास के मारे परेशान हो रहा था, उसने बिना कुछ सोचे-समझे कह दिया—"मैं यह चाहता हूँ कि यह पूरी नदी शर्बत बन जाय, और यह मेरी हो।"

परी ने अपनी जादू की लकड़ी घुमाई, और वह पहाड़ी नदी झागदार श्वेत जल-राशि से बदल कर लाल शर्बत के रूप में हो गई। जब ऐसा हो गया तो परी बोली—"तुमने जो माँगा, वह पूरा हो गया, अब इतनी बात याद रखना कि तुम इसका अच्छा इस्तेमाल करना।"

बड़ा भाई वहीं रह गया। परी छोटे दोनों भाइयों को एक हरे-भरे खेत के सामने ले गई। उस खेत के पास एक घासवाला मैदान था और उसमें सैकड़ों फाख्ते थे। वह फाख्ते बीज और कीड़े खोजने में व्यस्त थे। दयालु परी ने मंझले भाई से कहा—"अब तुम कोई वर माँग लो, पर सोच-समझ कर माँगना।"

मझले भाई ने थोड़ी देर तक सोच कर कहा—"मैं यह चाहता हूँ कि मैं एक अच्छा किसान बन जाऊँ, इसलिए आप इन फाख्तों को भेड़ बना दें और मैं उनका मालिक हो जाऊँ।"

दयालु परी ने जादू की लकड़ी घुमाई, और यह देखा गया कि वहाँ पर फाल्तों के बजाय भेड़ें चर रही हैं। परी बोली—"वह देखो, वह सामनेवाला खेत तुम्हारा है, ये भेड़ें भी तुम्हारी हैं। यदि तुम चाहो तो एक अच्छे किसान बन सकते हो, और तुम्हें किसी बात की कमी नहीं रहेगी। अपना भविष्य बनाना या बिगाड़ना, यह तुम्हारे ही हाथ में है।"

इसके बाद परी सबसे छोटे भाई को लेकर पहाड़ों की ओर चली। जब वह एक पहाड़ के नीचे पहुँच गई, तो उसने छोटे भाई से पूछा—"तुम्हारे मन में क्या इच्छा है? जो वर चाहो माँग लो।"

छोटे भाई ने फौरन उत्तर नहीं दिया। वह बड़ी देर तक सोचता रहा, फिर अन्त में बोला—"मैं एक सुन्दर-सी सुघड़ राजकुमारी चाहता हूँ, जिससे मैं शादी कर सकूँ।"

इस पर वह परी मुस्कराई। बोली—"तुम जो माँग रहे हो, वह बहुत मुश्किल है, फिर भी मेरे साथ आओ, देखूँ कि क्या किया जा सकता है।"

बहुत दिनों तक परी उस लड़के को अपने साथ लेकर घूमती रही। ऐसे कई दिन बीत गये। अन्त में वे एक शहर में आये जहाँ एक बड़ा राजा रहता था। परी सीधे ही राजमहल में गई और बोली—"क्या मैं राजकुमारी से मिल सकती हूँ? मैंने सुना है कि राजकुमारी बहुत अच्छी और सुन्दर है, अब यह देखना है कि वह है कैसी?"

परी को आज्ञा मिल गई, पर छोटा भाई मन ही मन घबड़ा रहा था कि मैं एक बहुत ही साधारण व्यक्ति हूँ, भला मेरी शादी एक राजकुमारी से कैसे हो सकती है। परी ने यह



उसने बिना कुछ सोचे-समझे कह दिया—"मैं यह चाहता हूँ कि यह पूरी नदी शर्बत बन जाय, और यह मेरी हो।"

ताड़ लिया कि वह लड़का क्या सोच रहा है। वह उसका ढाढ़स बढ़ाती रही। इतने में वे राजमहल के बड़े दालान के अन्दर आ गये।

जब वे वहाँ पर पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि उनसे पहले से बहुत से दूसरे लोग राजकुमारी से शादी करने की उम्मीदवारी में बैठे हैं। मालूम पड़ा कि इनमें से दो तो विशेष उम्मीदवार हैं। सामने ही वह सारा उपहार और सौगातें रखी हुई थीं, जो दूल्हे ले आये थे। परी ने उन चीजों के बगल में बेरों की वह टोकरी रख दी जिसे वे रास्ते में बटोर कर लाये थे।

छोटे भाई ने परी को जब ऐसा करते हुए देखा, उसे बड़ी शर्म आई और उसने उसे ऐसा करने से रोकना चाहा। उसने मन में यह सोचा कि यह लोग तो हीरा, सोना, चाँदी और न मालूम क्या-क्या लाये हैं, इनके बगल में बेरों की यह टोकरी होगी, तो उससे काम तो कुछ बनेगा नहीं, केवल हँसी ही होगी। पर इस बात पर परी मुस्कराती रही, और मना करने पर भी उसने बेरों की टोकरी वहीं पर रहने दी।

इसके बाद ही दालान के लोगों में कुछ चहल-पहल-सी मालूम पड़ी, सब के सब खड़े हो गये क्योंकि राजा इस समय राजकुमारी के साथ उस दालान में प्रवेश कर रहे थे। उनके लिए एक किनारे पर एक सिंहासन रखा हुआ था, वे उसी में जाकर बैठ गये। जब वे बैठ गये तो तीनों उम्मीदवार सिर नीचा करके खड़े हो गये।

राजकुमारी ने जल्दी ही इस बात को ताड़ लिया कि यद्यपि छोटा भाई फटे कपड़ों में था फिर भी वह देखने में दूसरे उम्मीदवारों से अधिक सुन्दर मालूम होता था, और वह स्वभाव से भी अच्छा जान पड़ता था। दो उम्मीदवारों में से एक अधेड़ और मोटा था, तथा दूसरा लम्बा और दुबला था। राजकुमारी को वे दोनों पसन्द नहीं आये। उसने अपने पिता से कहा कि वह उस फटे कपड़े वाले नौजवान से शादी करना पसन्द करेगी, पर राजा की यह इच्छा थी कि राजकुमारी बाकी उम्मीदवारों में से किसी से शादी करे क्योंकि वे सब बहुत धनी थे। पर राजा को साथ ही साथ अपनी लड़की का बहुत ख्याल था, इसलिए वह उसे दुःखी नहीं करना चाहते थे। राजा ने सोचा भला यह कैसे पता लगे कि इनमें से कौन सब से अच्छा है?

जब परी ने यह देखा कि राजा उधेड़बुन में पड़ा हुआ है, तो वह आगे बढ़ आई, बोली—"महाराज! आप इस प्रकार से यह मामला तय करें। आप तीन अंगूर की नयी बेल इन तीनों को अपने महल में लगाने को दें। जिसकी बेल में लगाने के तीन दिन के अन्दर ही फल आ जावे, उसी से आप अपनी लड़की की शादी कर दें।"

राजा ने मन ही मन सोचा कि यह तरीका अच्छा रहेगा क्योंकि न तो तीन दिन में किसी बेल में अंगूर लगेगा और न इनमें से किसी के साथ मेरी बेटी की शादी होगी। इसलिये राजा ने फौरन हुक्म दे दिया और तीन अंगूर की नयी बेलें लाकर हाजिर की गईं। उन बेलों पर उम्मीदवारों के नाम खोद दिये गये, और उन्हें राजमहल के बाग में लगा दिया गया।

राजकुमारी हर घंटे देखती रही कि किसी बेल में फल आता है कि नहीं, पर किसी में भी फल आता हुआ दिखाई नहीं पड़ा। जब दो दिन हो गये तो राजकुमारी बहुत

निराश हुई, और वह समझ गई कि इनमें से किसी में फल नहीं आना है। वह मन ही मन चाह रही थी कि उस गरीब नौजवान के नाम से जो बेल लगाई गई थी उसमें फल लगे जिससे कि उसके साथ शादी हो जाय।

तीसरे दिन राजकुमारी निराश होने पर भी अंगूर की बेल को देखने के लिए गई। रास्ते में वही गरीब नौजवान मिला। इस पर राजकुमारी ने यह समझा कि इतने बड़े राजमहल में शायद यह रास्ता भूल गया है, पर गरीब नौजवान भी अंगूर की बेल देखने ही जा रहा था। जब दोनों साथ ही साथ बेलों के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि एक बेल में बड़ा सुन्दर अंगूर लगा है। जब राजकुमारी ने यह देखा कि यह वही बेल थी जिस पर उस नौजवान का नाम लिखा था, तो वह इतनी खुश हुई कि तालियाँ पीटने लगी। नौजवान भी आनन्द से चिल्ला पड़ा। दोनों मिल कर राजा के पास पहुँचे। राजा इस बात पर बहुत खुश नहीं हुआ क्योंकि राजा का यह कहना था कि इतने गरीब नौजवान के साथ राजकुमारी का ब्याह हो नहीं सकता। पर वादा तो किया जा चुका था। पीछे लौटने का कोई रास्ता नहीं था। शादी हो गई और उसके बाद वह नौजवान अपनी दुलहिन को जगल के अन्दर एक छोटे से मकान में ले गया। यह मकान उसे परी से मिला था। इसी छोटे-से मकान में वे लोग खुशी के साथ रहने लगे।

एक साल के अन्त में परी यह देखने के लिए निकली कि तीनों भाई किस प्रकार जीवन बिता रहे हैं। पहले वह बड़े भाई के पास गई। वहाँ उसने भिखमगिन का रूप धर कर उससे एक प्याला शर्बत माँगा। जिन दिनों वह गरीब था, उन दिनों उसने भिखमगिन को अपना सर्वस्व दे दिया था, पर अब जबकि उसके पास धन ही धन था तो एक प्याला शर्बत भी नहीं दिया। वह बोला—"इसी तरह मैं हर एक को शर्बत दिया करूँ, तो बस हो चुका। फिर तो मैं इसी काम भर का रह जाऊँगा।" परी लौट गई, और उसके पीठ फेरते ही वह नदी शर्बत की नदी से बदल कर फिर से पानी की बन गई। बड़े भाई ने देखा कि उस पर क्या विपत्ति आई है, और वह परी का खुशामद करने लगा, पर परी ने सिर हिलाते हुए कहा—"जो जिस चीज के योग्य नहीं है, उसे वह चीज नहीं मिलनी चाहिए।"

अब परी मझले भाई के पास पहुँची। वहाँ उसने खाना माँगा। इस पर मझला भाई बोला—"मैं कभी भी मुफ्त में कुछ नहीं देता। मेरी समझ में ऐसे देने का अर्थ है आलस्य को प्रोत्साहन देना।"

उसका ऐसा कहना था कि वह सारी खेती और भेड़ें सब वहाँ से गायब हो गई। सामने एक उजड़ा हुआ मैदान दिखाई दिया जिसमें फाख्ताएँ चुग रही थीं। तब परी बोली—"जाकर उस नाशपाती के पेड़ के नीचे बैठो, और वहाँ पर बैठ कर अपनी गलती पर गौर करो। याद रखो कि भगवान ने यदि तुम्हें किसी योग्य बनाया है तो दूसरों कि मदद करने से पीछे मत हटो।"

अब परी तीसरे भाई के यहाँ पहुँची। जिस समय वह उसके यहाँ पहुँची, उस समय छोटा भाई अपनी दुलहिन के साथ खाना खा रहा था। भिखमंगिन को सामने देखते ही

उसे अपने पहले दिन याद आ गये और विना कुछ कहे उसने कहा—"आओ, भीतर आओ, और हमारे साथ खाना खाओ।"

लेकिन परी ने जो दृष्टि दौड़ाई तो देखा कि वहाँ रोटियाँ खत्म हो चुकीं थीं, पर राजकुमारी बोली—"मैं अभी और रोटी पका कर लाती हूँ। आप तब तक बैठ कर सुस्तायें। जो कुछ रूखा-सूखा घर में है मैं जल्द ही तैयार करके लाती हूँ।"

राजकुमारी रोटी बनाने जुट गई और थोड़ी ही देर में रोटियाँ तैयार हो गईं। परी को भरपेट खाना खिलाया गया और इसके बाद जब वह जाने लगी तो राजकुमारी ने बड़े प्रेम से कहा—"माता जी आज रात को आप इधर ही ठहर जायें।" इस पर परी ने अपनी जादू की लकड़ी घुमाई, और चारों तरफ बड़े जोर शोर से गर्जन सुनाई पड़ने लगी। डर कर छोटे भाई तथा राजकुमारी ने आँखें बन्द कर लीं और वह जमीन पर लेट गये। जब शोर बन्द हुआ, और उन्होंने आँखें खोलीं, तो देखा कि वह छोटा मकान उड़ गया और उसकी जगह पर एक बड़ा भारी राजमहल खड़ा है। यह राजमहल इतना बड़ा था कि राजकुमारी के पिता के पास भी इतना बड़ा राजमहल नहीं था। अब वे उसी में चैन-सुख से रहने लगे, और वर्षों तक लोगों की भलाई करते रहे।





उसकी पत्नी ने सन्दूक का ढक्कन खोल कर वह कपड़े निकाल कर उसे दिखाये, पर मुँह से कुछ न कहा।

लुहार की लड़की

नन्दलाल चत्ता

श्रीनगर में एक धनाढ्य सौदागर रहता था। उसके पास हर प्रकार के सुख की सामग्री थी, परन्तु उसे एक बात का बड़ा दु:ख था। उसका एक ही पुत्र था, और वह भी महा मूर्ख। सौदागर यह सोच-सोच कर कि उसका नालायक बेटा उसके कमाये हुए धन का नाश करेगा अत्यन्त चिन्तित रहता था। परन्तु सौदागर की पत्नी कुछ और ही सोचती थी। उसका ख्याल था कि उसका नालायक बेटा सुयोग्य पत्नी पाकर मूर्ख नहीं रह पायेगा। इसलिये वह प्रतिदिन अपने पति, सौदागर, से कहती—"बेटा बड़ा हो गया है, इसका विवाह करना चाहिए जिससे हम भी घर में एक बहू लाकर अपने जीवन के शेष दिन सुख में बिता सकें।"

सौदागर उत्तर में कहता—"विवाह करना तो ठीक है। पर क्यों किसी अबला को इस मूर्ख के पल्ले बाँधने को कहती हो। उस बेचारी का जीवन नष्ट हो जायगा। बेटा सुधर नहीं सकता। मूर्ख है ही, और मूर्ख रहेगा भी। हमारा नाम डुबायेगा, इसलिए मुझ से इस बारे में कुछ भी न कहा करो।"

परन्तु पत्नी के बार-बार अनुरोध करने पर वह एक दिन राजी हो गया। पर एक शर्त तय हुई। वह यह थी कि सौदागर मूर्ख बेटे को एक बार फिर से आजमाये। पत्नी ने यह शर्त स्वीकार कर ली।

सौदागर ने दूसरे दिन अपने पुत्र को पास बुला कर कहा—"बेटा यह लो तीन पैसे। इनको लेकर बाजार जाओ। एक पैसे में अपने लिए कुछ चबेना लो। दूसरे को पानी मे डाल दो। तीसरे पैसे से पाँच चीजें मोल लो, कुछ खाने की, कुछ पीने की, कुछ चबाने की, कुछ बाग मे बोने की और कुछ गाय को खिलाने के लिए।"

सौदागर-पुत्र तीन पैसे लेकर बाजार गया। पहले पैसे से अपने लिए कुछ खाने की चीजें लीं, और नदी की ओर चला। नदी पर पहुँच कर वह सोचने लगा कि पैसा तो काम की चीज है, मैं इसे नदी मे क्यों फेंक दूँ, पर पिता की आज्ञा को भी तो मानना ही है। यह सोचते-सोचते उसने न तो नदी में पैसा ही फेंका, और न यह सोच सका कि क्या किया जाय। वह वहीं नदी किनारे बुत की तरह खड़ा हो गया। इतने में वहाँ एक नवयुवती आई। उसने जब सौदागर-पुत्र को इस प्रकार देखा, तो पास आकर बोली—"आप क्या सोच रहे हैं ?"

सौदागर-पुत्र ने सारी बात कह सुनाई तो वह बोली—"पैसा नदी मे फेंकना मूर्खता है। यह तो पास रखने की चीज है, और एक पैसे में पाँच चीजें मोल लेने से तुम्हारे पिता का अर्थ है कि तुम एक तरबूज मोल ले लो। इसमें ही पाँचो चीजें हैं।"

यह नवयुवती वहाँ के लुहार की बुद्धिमान बेटी थी। सौदागर-पुत्र ने उसकी बात मान ली। वह बाजार से एक तरबूज मोल लेकर घर गया, और उसे अपने पिता के सामने रखा। उसका पिता यह देख हैरान हुआ कि उसका मूर्ख पुत्र एकदम बुद्धिमान कैसे हो गया। इस पर उसने उससे पूछा—"बेटा सच बताओ तुम्हे यह वस्तु मोल लेने में किसने मदद दी। यह तो तुम्हारी बुद्धि से बाहर है।"

बेटे ने झट से सारी बात कह दी। सौदागर ने लुहार की लड़की की बुद्धिमत्ता की दाद दी, और मन में निश्चय कर लिया कि यदि बेटे का विवाह करना ही है, तो इसी लड़की से होना चाहिए। उसने यह बात अपनी पत्नी से भी कह दी। उसे भी यह बात बहुत पसन्द आई।

दिन बीतते गये। एक दिन सौदागर लुहार के घर इस ख्याल से गया कि उसकी लड़की से बेटे के विवाह की बात पक्की कर दे। परन्तु उस समय न तो लुहार ही घर में मौजूद था, और न उसकी पत्नी ही। लुहार की बेटी ने धनवान मेहमान का सादर आसन दिया, और चाय बनाई। सौदागर ने चाय का प्याला पीते हुए कहा—बेटी तुम्हारे माता-पिता कहाँ गये हैं ?"

चतुर बालिका ने कहा—"मेरे पिता जी तो बाजार एक कौड़ी का हीरा मोल लाने और माता जी एक के घर कुछ बातें बेचने गई हैं।"

सौदागर ने लाख कोशिश की कि इस बात को समझ ले, पर समझ न सका। सो उसने फिर कहा—"बेटी, मैं तुम्हारी बातें नहीं समझ सका, कृपा करके मुझे समझा दो।"

यह सुन वह बोली—"मेरे पिता जी तो दीये के लिए एक कौड़ी का तेल लाने गये हैं। मेरी माता जी किसी का विवाह निश्चित करने के लिए गई हैं। यही इसका अर्थ है।"

इतनी देर में लुहार और उसकी पत्नी भी आ गई। सौदागर ने उनसे अपने आने का कारण कह सुनाया। वह इस बात को मान गये और मूर्ख सौदागर-पुत्र का विवाह चतुर लुहार-पुत्री से होना पक्का हो गया।

दूसरे दिन ही सारे शहर में यह खबर फैल गई कि सौदागर अपने पुत्र का विवाह एक लुहार की पुत्री से करने जा रहा है। शहर में तरह-तरह की बातें होने लगीं। बहुत से दुष्टों को जलन भी हुई कि एक गरीब बाप की बेटी बड़े सौदागर की बहू हो जावेगी। यह

इसको सहन न कर सके और एक दिन सौदागर-पुत्र से जाकर बोले—"देखो जी तुम अमीर हो। इस पत्नी से, जोकि तुम जानते हो गरीब बाप की बेटी है, तुम दु ख पाओ। इसलिए उसे काबू में रखने के लिए उसकी प्रतिरात जूतों से मरम्मत करते रहना, नहीं तो अन्त मे वह सिर पर सवार हो जायेगी।" मित्रों की यह बात उस मूर्ख ने मान ली।

जब इस बात का पता लुहार को चला तो उसने अपनी पुत्री को इस बात पर मजबूर करना चाहा कि वह ऐसे मूर्ख से विवाह न करे। पर उसने कहा—"मैं विवाह करूँगी और इसी सौदागर-पुत्र से ही करूँगी।" फिर समझा कर बोली—

"आप कोई चिन्ता न करें, वह जो कुछ कहता है, वैसा कभी नहीं होगा और मैं अपनी बुद्धि से सब के जीवन को सुखी बना लूँगी।"

कुछ दिनों बाद बड़ी धूम-धाम के साथ उनका विवाह रचा गया। पहली रात को ही मूर्ख सौदागर-पुत्र ने अपने दुष्ट मित्रों की शिक्षा पर चलने के इरादे से जूता उठा लिया और यह सोच कर कि उसकी पत्नी सोई हुई है उसने उसको जूतों से मारने की कोशिश की पर उसने हाथ पकड़ते हुए कहा—"देवता, सुहागरात को ऐसा नहीं होना चाहिए यह बुरी बात है।"

उसका पति, सौदागर-पुत्र, मान गया। इस प्रकार वह प्रतिरात उसको कुछ न कुछ कह कर टालती रही। सात दिन के बाद बहू अपने मैके चली गई। यार लोगों को जब सौदागर-पुत्र से पता चला कि उसने उनके कहने पर अमल नहीं किया है तो बोले—"तुम तो डरपोक ही निकले। अब देखना तुम्हारी बीवी तुमको कैसा नाच नचायेगी।"

बहू तो मैके गई, और इधर सौदागर ने अपने पुत्र को बहुत सा धन, माल, नौकर-चाकर, सवारी इत्यादि देकर बाहर के देश में व्यापार करने को भेजा। सौदागर का विचार था कि इससे उसका पुत्र कुछ तजर्बा प्राप्त करेगा। सौदागर-पुत्र विदेश जाते हुए एक दिन एक शहर में पहुँचा। वहाँ उसने एक विशाल महल की एक खिड़की से एक सुन्दर युवती को झाकते हुए देखा। महल के चारों ओर एक ऊँची दीवार थी और इसके चारों ओर सेब, नाशपाती और बादामों का एक बड़ा बाग था। उस सुन्दर स्त्री ने सौदागर-पुत्र को महल में आने का संकेत किया। सौदागर-पुत्र महल के अन्दर अपने सब नौकर-चाकर और माल इत्यादि लेकर गया। कुछ मीठी-मीठी बातें करने के बाद युवती ने उसे नर्द (काश्मीर में एक विशेष प्रकार का शतरज) खेलने को कहा। उसने खेलना स्वीकार कर लिया। पर सौदागर-पुत्र नर्द खेलना तो जानता ही न था, और वह युवती इसमें सिद्धहस्त थी। कुछ ही खेलों के बाद सौदागर-पुत्र अपना सब कुछ और अपने आपको भी हार गया। उस युवती ने उसका माल-दौलत अपने कोष में जमा करवाया और उसको उसके नौकरों सहित जेल में बन्द कर दिया। जेल में उसके साथ बुरा व्यवहार होने लगा और वह बहुत दुबला हो गया।

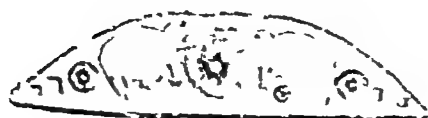
जेल के सीखचों में से उसने एक दिन एक राह चलते से विनय की कि वह उसकी बात सुन ले। पथिक के यह कहने पर कि वह श्रीनगर का रहनेवाला, सौदागर-पुत्र ने उसको पत्र ले जाने को कहा। पथिक ने उस पर दया करके उसको कलम, दवात और कागज

लाकर दिया, और उसने दो पत्र लिख कर उसको दिये। एक पत्र तो उसने अपने पिता को लिखा, जिसमें उसने सब हाल सच-सच लिख दिया और दूसरा अपनी पत्नी के लिए, जिसमें उसने लिखा, "मैं अब बहुत धनवान हो गया हूँ और अब जल्दी आकर तुम्हे खूब जूते मारूँगा।" पथिक दोनों पत्र लेकर विदा हुआ।

वह बेचारा अनपढ़ था। शहर में आकर उसने पिता के नाम का पत्र लुहार की लड़की को दिया और उसका पत्र सौदागर को। लुहार की लड़की ने पत्र देखा तो बहुत दुखित हुई, और झट सौदागर के पास गई। उसने भी अपना पत्र दिखाया। योग्य वहू ने सौदागर से माल-दौलत माँग कर उसी प्रकार शहर से विदेश के लिए प्रस्थान किया और अपना रूप एक सौदागर का बना कर वह भी उसी महल के पास आई। महल में जाकर उसने उस स्त्री को नर्द खेलने के लिए ललकारा। युवती के नौकरों को प्रलोभन देकर उसने अपने पक्ष में पहले ही कर लिया और उस युवती के हर बार जीतने का भेद भी जान लिया। दूसरे दिन उसने नर्द की सब बाजियाँ जीत कर उस युवती तक को जीत लिया और उसको अपना कैदी बनाया। उसी क्षण उसने अपने पति को जेल से बाहर निकलवाया और उसके कपड़े बदलवाये। पर वह उसे न पहचान सका।

अगले दिन लुहार-पुत्री ने अपने शहर के लिए प्रस्थान किया। उस हारी हुई युवती का सब माल भी ऊँटों और घोड़ों पर लाद लिया और अपने पति के जेल की पोशाक को एक सन्दूक में बन्द करवा कर उसको अपने पास ही रख लिया। शहर से बाहर पहुँचते ही उसने अपने पति को सब माल लेकर घर जाने को कहा और बोली—"आप घर जाइये और मैं भी जल्दी ही आपसे मिलने आता हूँ।"

घर लौटने पर सौदागर-पुत्र का स्वागत बहुत अच्छी तरह हुआ। उसके माता-पिता के सुख का अन्त न रहा। कुछ समय के बाद उसकी पत्नी भी वहाँ आई। मूर्ख सौदागर-पुत्र यह सोच कर कि वह अब बहुत मालदार है एकदम से उठा, अपने पाँव से जूता उतारा और अपनी पत्नी को पीटने पर उतारू हुआ। उसकी पत्नी ने उसके जेल की निशानी, कपड़ों का सन्दूक, जो साथ लाई थी, मँगवाई। उसने उसका ढकन खोल कर वह कपड़े निकाल कर उसको दिखाये पर मुँह से कुछ न कहा। सौदागर-पुत्र यह देखकर हैरान हुआ और सब बात समझ गया कि उसको छुड़ानेवाला उसकी बुद्धिमती पत्नी के सिवा और कोई नहीं था। वह बड़ा लज्जित हुआ, और उसने अपनी सारी कहानी कह सुनाई और उससे माफी माँग ली। इसके बाद वह दोनों सुख से जीवन बिताने लगे।





देखनेवाले भी अधड़े को देख कर तरस खाते, पर सब भाई उसकी हँसी उड़ाते और नौकर चाकर अकेले में चिढ़ाते।

लोककथा के आधार पर

अधड़ा

श्रीमती शान्ति गुप्ता

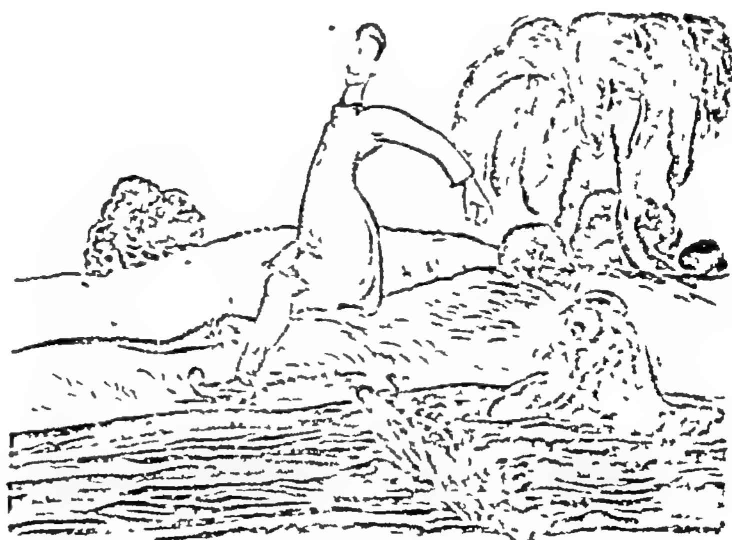
एक देश में एक राजा रहता था। उसके सात बेटे थे। उनमें से छः बेटे लम्बे-चौडे और खूब हृष्ट-पुष्ट थे। लेकिन सबसे छोटा बेटा आधे शरीर का था। उसके एक हाथ था, एक पैर, एक आँख, एक कान, आधी नाक, और आधा सिर था। इसलिए सब उसे अधडा कह कर पुकारते थे। अधडा कद का छोटा था। उसकी आँख बिलकुल छोटी-सी थी। जब वह कोई चीज देखता, तो अपनी आँख जल्दी-जल्दी घुमाता। उसका कान भी छोटा सा था, जब वह कुछ सुनने की कोशिश करता तो कान पर हाथ लगा लिया करता। ये सब तो था ही, उसकी चाल सबसे बढ़िया थी। एक टाँग से मुर्गे की तरह अकड-अकड़ कर चलता।

अधड़े की माँ उसे अपाहिज जान कर उसका सबसे अधिक ध्यान रखती। उसका लाड़-प्यार अधडे पर ही रहता। देखनेवाले भी अधड़े को देख कर तरस खाते, पर सब भाई उसकी हँसी उड़ाते और नौकर-चाकर अकेले में चिढ़ाते। अधड़ा उन सबकी शिकायत माँ से करता, तो उन्हें खूब डाँट पड़ती। लाड़-प्यार से धीरे-धीरे अधडे का स्वभाव बिगड़ गया। वह सबसे अकड कर बोलता, कभी किसी की सहायता न करता और न किसी के दु ख-दर्द मे काम आता। वह घमडी भी हो गया, और अपने आपको बहुत चतुर समझने लगा।

धीरे-धीरे अधड़ा बड़ा हुआ। अब उसे दुनिया देखने की इच्छा हुई। उसने अपनी इच्छा माँ से कही। माँ ने उसको बहुत समझाया कि बाहर जाकर बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। और फिर पर वह तो अधड़ा था, कहीं मुसीबत में पड़ जाय, तो बचना भी मुश्किल। माँ के बहुत मना करने पर भी भला अधड़ा कहाँ रुकनेवाला था। उसकी तो आदत थी कि जब कभी कोई धुन समा जाती, तो अवश्य उस काम को करके छोड़ता। जब अधड़ा किसी तरह नहीं माना तो माँ ने उसके साथ कुछ जरूरी सामान रख दिया और चलते वक्त बोली—"बेटा एक बात याद रखना—जो कोई तुमसे सहायता माँगे उसकी सहायता अवश्य करना और सबसे नरमी का बर्ताव करना। जाओ, भगवान तुम्हारी रक्षा करे।" माँ की बात सुन कर अधड़ा घर से चल दिया।

अपने शहर से निकल कर अधड़ा एक जंगल में आ पहुँचा। वहाँ एक पेड़ की छाया में बैठ कर सुस्ताने लगा। इतने में उसे कहीं से एक नन्हीं-सी आवाज सुनाई दी—'मेरी सहायता करो।' अधड़े ने अपनी छोटी-सी आँख घुमा-घुमा कर चारों ओर देखा और कान लगा कर सुना। यह आवाज पास बहते हुए झरने में से आ रही थी। झरना अधड़े से प्रार्थना करने लगा, बोला—"महाशय, घास और पत्तियों ने अटक कर मेरा रास्ता रोक दिया है। मैं आगे बह नहीं सकता, दया करके मेरा रास्ता साफ कर दीजिये।"

अधड़ा अकड़ कर बोला—"हुँ, मैं कोई भंगी जमादार हूँ, जो तुम्हारा कूड़ा करकट निकालूँ। सड़ते रहो, वहीं पड़े। मुझे बहुत दूर जाना है।" यह कह कर वह अकड़ कर चल दिया।"



झरना अधड़े से प्रार्थना करने लगा,—'महाशय, घास और पत्तियों ने अटक कर मेरा रास्ता रोक दिया है। मैं आगे बह नहीं सकता, दया करके मेरा रास्ता साफ कर दीजिये।'

आगे चल कर रास्ते में राख का ढेर मिला। अधड़े को एक नन्हीं-सी आवाज सुनाई दी—"मेरी सहायता करो।" अधड़े ने अपनी छोटी-सी आँख घुमा-घुमा कर चारों तरफ देखा और कान लगा कर सुना। यह आवाज राख के ढेर में से आ रही थी। राख के ढेर में भी दबी हुई आग अधड़े से प्रार्थना करने लगी, बोली—'महाशय मेरे ऊपर थोड़ी-सी घास-फूस डाल दीजिए। मैं बुझी जा रही हूँ। मेरी सहायता करिये।"

यह सुन कर अधड़ा अकड़ कर बोला—"मैं कोई भाड़ झोंकनेवाला हूँ, जो तुम्हारे

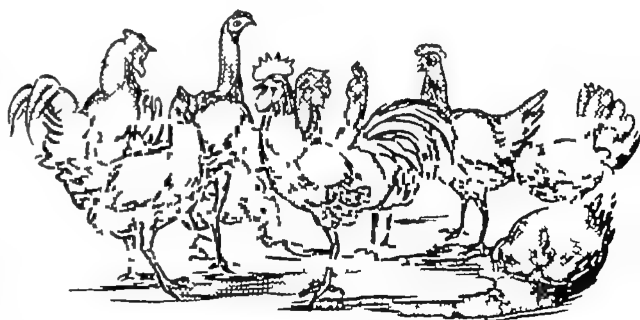
ऊपर घास-फूँस डालूँ। पडी बुझती रहो। मुझे बहुत दूर जाना है।" यह कह कर मुर्गे की तरह अकड़ कर वह आगे बढा।

चलते-चलते कुछ झाडियाँ मिलीं। अधडे को फिर एक नन्हीं-सी आवाज आई—"मेरी सहायता करो।" उसने अपनी छोटी-सी आँख घुमा-घुमा कर चारों तरफ देखा और कान लगा कर सुना। झाडियों में से हवा अधड़े से गिड़गिड़ा कर प्रार्थना करने लगी, बोली—"महाशय, कृपा करके मुझे इन झाडियों में से निकाल दीजिये, मैं यहाँ फँसी पड़ी हूँ। यहाँ से छुटकारा पाऊँ तो आसमान की सैर करूँ।"

अधड़े ने अकड़ कर कहा—"मैं कोई धौकनी हूँ, जो तुम्हें फूँक मार कर वहाँ से छुड़ा दूँ। वहीं बँधी पड़ी रहो, मुझे बहुत दूर जाना है।" यह कह कर अधड़ा मुर्गे की तरह अकड़ता हुआ फिर आगे को बढ़ा।

जगल पार करके अधड़ा एक शहर में आ पहुँचा। शहर में वह जहाँ भी जाता उसे सब आँख फाड़-फाड़ कर देखते। एक-दूसरा अधडे को दिखा कर कहता—"अरे देख! क्या अजब जानवर है! हमने तो आज तक कभी ऐसा देखा ही नहीं। न जाने कौन से देश से आया है।" और जब अधड़ा अकड़ कर आगे बढ़ जाता, तो लोग खूब हँसते, बच्चे तालियाँ पीटते। वह किसी की परवाह न करता हुआ सारे शहर में घूम आया। वहाँ उसे कहीं ठहरने की जगह न मिली। थक कर एक पेड़ के नीचे सो गया। जाड़े का मौसम था, और उसके पास ओढ़ने लायक कोई कपडा भी नहीं था। रात को उसे सपने मे झाड़ियों में फँसी हुई हवा दिखाई दी। वह कह रही थी—"उस दिन तुमने मेरी सहायता नहीं की। अब मेरी ताकत देखना।" रात भर ठंडी हवा चलती रही और अधड़ा वहीं पड़ा हुआ हवा के थपेडे खाता रहा। वह जाड़े के मारे मुर्गा बना पड़ा रहा सूरज निकलने पर वह जागा तो उसने अपने को सचमुच का मुर्गा बना पाया। अधड़ा मुर्गा होकर भी आधा ही रहा। वही एक आँख, आधा सिर, आधा पेट और एक टांग। बेचारा बड़ा दु खी हुआ।

फुदकता-फुदकता शहर की तरफ दाने की तालाश में निकला। चलता-चलता राजा के मुर्गीखाने में जा पहुँचा और लगा जोर से बाग लगाने। बेवक्त की बाग सुनकर सब मुर्गे-मुर्गी उसकी तरफ देखने लगे और घेर कर खडे हो गये। अधडे ने सबको अपने चारों ओर देखा तो शान के मारे अकड़ गया। और कुड़क-कुड़क करता हुआ दाना चुगने लगा। इतने



बेवक्त की बाग सुनकर सब मुर्गे-मुर्गी उसकी तरफ देखने लगे और घेर कर खडे हो गये। अधडे ने सबको अपने चारों ओर देखा तो शान के मारे अकड़ गया।

में राजा का रसोइया मुर्गी लेने आया। उसकी निगाह अधड़े पर पड़ी बस उसने उसे टांग पकड़ कर उठा लिया और रसोई में ले जा कर पानी के बर्तन मे डाल दिया। बर्तन आग पर रख दिया। अधड़ा पानी से गिड़गिड़ा कर कहने लगा—"मुझे दया करके बाहर निकाल दो, नहीं तो मैं मर जाऊँगा।" पानी हँस कर बोला—"क्या तुम घास और पत्तियों से अटके हुए पानी के झरने को भूल गये? मैं वही हूँ। तुमने मेरी जैसी मदद की थी, वैसे ही मैं तुम्हारी मदद करूँगा।" अधड़ा अपना सा मुँह लेकर रह गया।

धीरे-धीरे पानी गरम होने लगा और अधड़ा झुलसने लगा। तब वह आग से गिड़गिड़ा कर बोला—"मुझ पर दया करो। तुम अपनी लपटें नीची रक्खो, नहीं तो पानी गरम होकर मुझे मार डालेगा।"

आग बड़ी जोर से हँसी, बोली—"क्या तुम राख के ढेर मे दबी आग को भूल गये, जब उसने तुमसे गिड़गिड़ा कर सहायता माँगी थी, तुमने कुछ किया था? मैं वही आग हूँ। अब तुम यहीं जल कर मरो।" यह कह कर आग अपनी लपटे ऊँची करके जलने लगी।

अब तो अधड़े की जान पर बन आई। उसने बहुत हाथ-पैर मारे और बर्तन का ढकना हटा लिया, फुदक कर बाहर आया और खिड़की में जा बैठा। इतने ही मे बड़े जोर की हवा चली और गोले अधड़े को ऊपर उड़ा कर ले गई। अधड़ा नीचे आने की कोशिश करता और हवा उसे ऊपर उठाती हुई उसे आसमान में बहुत ऊँचाई पर ले गई और वहाँ से उसे एक दम नीचे पटक दिया। अधड़ा एक ऊँचे बुर्ज पर लगी हुई लोहे की कील पर आकर अटक गया। वहाँ से वह लाख कोशिश करने पर भी अपने को न छुड़ा सका और अब वह वहाँ पर अभी तक अटका हुआ है। हवा उसे खूब नचाया करती है।

लोग कहते हैं कि वह हवा की दिशा बतानेवाला यन्त्र है।



लोग कहते हैं कि यह हवा की दिशा बतानेवाला यन्त्र है।

साहसी लच्छी

हंसराज रहबर

किसी गाँव में एक लड़की रहती थी, जिसका नाम था लच्छी। एक दिन वह अपनी सखियों के साथ कुएँ पर पानी भरने गई। वहाँ सब लड़कियाँ अपने सगाई-ब्याह की बातें कर रही थीं। एक सहेली जिसका नाम बनतो था, बोली—"मेरे पिता ने मेरे ब्याह के लिए कीमती वस्त्र खरीद रखे हैं।"

दूसरी ने कहा—"मेरे लिए ससुराल में मखमल की सुन्दर वरी (दुलहन के ब्याह के वस्त्र) तैयार हो रही है।" यों सब लड़कियाँ बातें कर रही थीं। कोई अपने भाई की बात कहती थी और कोई मामू की।

लच्छो बेचारी सखियों की बातें चुपचाप सुन रही थी। उसके पास कहने को कोई बात नहीं थी। बहुत दिन हुए-उसके माता-पिता मर चुके थे और वे उसके लिए कोई धन-दौलत भी नहीं छोड़ गये थे। कोई दूसरा सगा-सम्बन्धी भी नहीं था, जिसका सहारा लेती। बेचारी अकेली थी और गरीबी में दिन काट रही थी। उसके ब्याह का प्रबन्ध कौन करता? लेकिन जी चाहता था कि वह भी सखियों की बातचीत में हिस्सा ले, इसलिए उसने यों ही एक बात बनाई और कहा—"मेरा चाचा भी परदेश से आ रहा है, वह मेरे लिए बहुत से जेवर, गहने और कीमती कपड़े लायेगा।"

एक बिसाती, जो गाँव में अपना सामान बेचने आया था, कहीं पास ही बैठा लड़कियों की यह बातें सुन रहा था। वह बिसाती एक चालाक ठग था और सामान बेचने के बहाने लोगों के भेद मालूम किया करता था। जब उसका दाँव लगता था, लोगों को लूट लेता था।

लच्छो की बात सुनकर वह मन ही मन प्रसन्न हुआ और दूसरे दिन भेस बदलकर उसके घर चला गया। वह अपने साथ कीमती वस्त्र और भूषण भी लाया था। उसने लच्छो से कहा—"मैं तुम्हारा चाचा हूँ। कई साल परदेश में रहकर बहुत सा धन कमाकर लौटा हूँ। मैं तुम्हारा ब्याह अपने एक धनी मित्र के बेटे से करना चाहता हूँ।" लच्छो भोली-भाली सरल स्वभाव की लड़की थी। उसने ठग की बातों का सहज में विश्वास कर लिया। उसने घर का सारा सामान बाँधा और ठग के साथ चल पड़ी। जब वे दोनों ठग के घर की ओर चले जा रहे थे, एक चिड़िया ने चीं-चीं करते हुए कहा.

'वाहनी लच्छो, अक्लों घुत्थी
ठग नाल ठगी गई।'

(वाहरी लच्छो, तेरी अक्ल कहाँ खो गई जो तू एक ठग से ठगी गई।)

लच्छो पक्षियों की भाषा समझती थी। उसने अपने चाचा से पूछा—"यह चिड़िया क्या कह रही है?"

ठग ने उत्तर दिया—"चीं-चीं करना और शोर मचाना इन चिड़ियों की आदत

है। हमें इससे क्या मतलब ?" थोड़ी दूर आगे बढ़े तो उन्हें एक मोर मिला, उसने भी वही बात कही।

फिर एक गीदड़ मिला, उसने भी यही बात दोहराई। लच्छो के पूछने पर ठग हर बार कह देता था कि शोर मचाना इन पशुओं और पक्षियों की आदत है, हमें इनसे क्या मतलब ?

वह ठग लच्छो को साथ लिए अपने घर पहुँचा और घर पहुँचते उसने सारा भेद अपने आप खोल दिया और लच्छो से कहा—"मैं तुम्हारा चचा या कोई दूसरा सगा-सम्बन्धी नहीं हूँ। मैं तो तुम्हारी सुन्दरता पर मुग्ध हूँ और तुम्हारे साथ ब्याह करने के लिए तुम्हें यहाँ लाया हूँ।"

लच्छो सुनकर बहुत रोई लेकिन अब क्या हो सकता था। उसके लिए अब वहाँ से भाग जाना भी सम्भव नहीं था। उसे मार्ग के पशु-पक्षियों की बातें याद आई और यह अफसोस हुआ कि उसने उन पर ध्यान क्यों नहीं दिया। वह वाकई ठग से ठगी गई थी।

ठग जब चोरी और ठगई के लिए बाहर जाता तो लच्छो को अपनी माँ के सुपुर्द कर जाता कि वह उस पर कड़ी निगरानी रखे और उसे कहीं बाहर न जाने दे। ठग की माँ बहुत बूढ़ी थी। उसके मुख पर झुर्रियाँ थीं, गालों का मांस लटक गया था और सिर गंजा था।

लच्छो के बाल बहुत लम्बे थे—काले और सुन्दर! नागिन की तरह लहराते हुए। बुढ़िया को लच्छो के यह बाल बहुत पसन्द थे। एक दिन जब उसका बेटा ठग घर से बाहर गया हुआ था तो उसने लच्छो से पूछा—"तुम्हें यह सुन्दर बाल कहाँ से मिले हैं ?"

लच्छो ने एकदम बात बनाई, बोली—"यह सब मेरी माँ की कृपा है। उसने एक दिन मेरा सिर ओखली में रखकर ऊपर से मूसल मारे। जैसे-जैसे मूसल पड़ते थे, मेरे बाल लम्बे होते जाते थे। हमारे गाँव में बाल बढ़ाने का यह पुराना रिवाज है।"

बुढ़िया बोली—"मेरा सिर तो गंजा है। ओखली में सिर देकर और ऊपर से मूसल मार कर क्या मेरे बाल भी लम्बे हो जायेंगे ?"

लच्छो ने झट उत्तर दिया—"क्यों नहीं ? जरूर हो जायेंगे।"

बुढ़िया बाल उगाने की खुशी में ओखली सिर देने के लिए तैयार हो गई। दूसरे दिन ठग जब काम से बाहर गया, बुढ़िया ने लच्छो से अपने बाल बढ़ाने को कहा। लच्छो ने ओखली में उसका सिर रख कर ऊपर से धड़ाधड़ मूसल मारना शुरू किया। मूसल की चोटों के नीचे बुढ़िया तड़पने लगी, और पाँच-सात चोटों ही से वह मर गई। लच्छो ने बुढ़िया को विवाह के वस्त्र पहनाये और घूंघट निकाल



कर दीवार के सहारे एक कोने में बैठा दिया। इसके बाद लच्छो ने घर का थोडा धन और सामान समेटा और वहाँ से भाग खडी हुई।

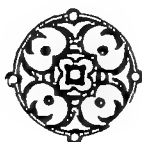
रास्ते में उसे ठग मिला। वह कहीं से चक्की के दो पाट चुरा कर लौट रहा था। लच्छो उसे देखते ही एक झाड़ी में छिप गई। ठग ने लच्छो को देख तो लिया, मगर पहचाना नहीं। वह समझा कि कोई औरत किसी काम से घर आई है और इस ख्याल से कि कहीं वह चोरी का माल देख कर शोर न मचादे, वह खुद छिपता हुआ अपनी राह चलता रहा। जब वह बहुत दूर चला गया तो लच्छो झाडी की ओट से बाहर निकली और अपने गाँव को चल पड़ी।

ठग जब घर पहुँचा तो उसने लच्छो को आवाज़ दी। उसे कोई उत्तर नहीं मिला। जब बार-बार पुकारने पर लच्छो न बोली, तो उसे क्रोध आ गया, और उसने चक्की के पाट बुढ़िया के सिर पर दे मारे। वह नये वस्त्रों में बुढिया को लच्छो समझ रहा था। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि वह लच्छो नहीं उसकी माँ है तो वह फफक-फफक कर रोने लगा। उसने समझा कि उसकी माँ चक्की के पाटों ही से मरी है। ठग ने मन ही मन में निश्चय किया कि वह लच्छो को वापस लाकर ही दम लेगा।

लच्छो गाँव में लौटकर आई तो ठग के डर से अपनी एक सखी के घर रहने लगी। जब एक महीना इसी प्रकार बीत गया तो उसने सोचा कि ठग अब नहीं आयेगा तो वह अपने घर में रहने लगी। जब रात को सोती तो अपनी रक्षा के लिए एक तेज खजर अपने सिरहाने रख लेती।

एक रात जब वह गहरी नींद में सोई पडी थी, ठग आया। उसके साथ तीन ठग और भी थे। उन्होंने सोई हुई लच्छो को चारपाई के साथ बाँध दिया, और उठा कर चलते बने। लच्छो की आँख खुल गई थी, लेकिन वह चुपचाप लेटी रही। जब वह जगल में पहुँचे तो लच्छो ने धीरे से खजर निकाला और पिछले दो आदमियों के सिर काट डाले, और फिर तीसरे आदमी का भी सफाया कर दिया। लेकिन ठग जान बचा कर पेड़ पर चढ़ गया। लच्छो ने पेड़ को आग लगा दी। ठग उसके साथ ही जल कर राख का ढेर हो गया।

यों लच्छो ने अपनी वीरता और साहस से ठग पर विजय पाई। वह उसके घर गई और उसका सारा धन और सामान छकड़े पर लाद कर अपने घर ले आई। आसपास के देहात में उसकी वीरता की चर्चा होने लगी। बहुत से नौजवान उसके साथ ब्याह करने को तैयार थे। लच्छो ने अपनी पसन्द के एक लडके से ब्याह कर लिया और वे दोनों सुख और आनन्द से एक साथ रहने लगे।



गर्म जामुन

टी० एन० एस० सीतारामन

बहुत दिनों की बात है तमिलनाड में एक बुढ़िया रहती थी। उसका नाम औवैयार था। वह बहुत सुन्दर कविता रचती थी। उसकी कविताओं से मुग्ध हो कर बड़े-बड़े राजा लोग भी उसका आदर करते थे। राजदरबार में भी उसकी जोड़ का कोई दूसरा कवि न था। इस कारण उसे बहुत घमंड हो गया।

एक रोज वह कहीं जा रही थी। सड़क के किनारे जामुन के पेड़ थे। काले-काले जामुन पेड़ों की डालियों पर लटक रहे थे। जामुन को देख कर औवैयार के मुँह में पानी भर आया। पर पेड़ बहुत ऊंचे थे। बेचारी बुढ़िया क्या कर सकती थी? बुढ़िया ने एक पेड़ के नीचे आकर ऊपर देखा। पेड़ के ऊपर एक चरवाहे का लड़का डाल पर बैठ कर जामुन खा रहा था। लड़के को देख कर बुढ़िया ने उससे कहा, "बेटा, मैं भूखी हूँ, मुझे भी कुछ जामुन खिलाओ।"



यह सुनकर लड़के ने बुढ़िया से पूछा, "नानी, तुमको गरम-गरम जामुन चाहिए या ठंडे-ठंडे ?"

यह सुन कर लड़के ने बुढ़िया से पूछा, "नानी, तुमको गरम-गरम जामुन चाहिए या ठंडे-ठंडे ?"

यह सुन कर बुढ़िया पशोपेश में पड़ गई और उसने लड़के से पूछा, "बेटा, तुम पागल तो नहीं हो? कहीं जामुन भी गरम या ठंडे हो सकते हैं? नहीं, नहीं यह तुम्हारा भ्रम मात्र है।"

लड़के ने फिर कहा, "अजी औवैयार जी! आप तो विदुषी हैं, आपका नाम सुनते ही तमिलनाड के बड़े बड़े विद्वान लोग भी डरते हैं। फिर यह छोटी सी बात भी आप नहीं

समझतीं तो यह आपकी ही कमी है। मैं पागल थोड़े ही हूँ। अच्छा अब आप कहिये कि आप गरम-गरम जामुन खायेंगी या ठंडे-ठंडे।"

लड़के की बातें सुन कर औवैयार बिलकुल अचंभे में आ गई। उसकी समझ में यह नहीं आया कि जामुन गरम कैसे हो सकते हैं। फिर भी वह इस रहस्य को समझने के लिए आतुर थी। उसने लड़के से कहा, "बेटा, तुम मुझे गरम-गरम जामुन ही खिलाओ।"

लड़का हँस कर बोला, "अच्छी बात है, बूढ़ी नानी, यह लो मैं तुमको गरम-गरम जामुन खिलाऊँगा।" यह कह कर लड़के ने एक डाल को जोर से हिलाया। खूब पके हुए काले-काले जामुन जमीन पर धूल में बिछ गये। बुढ़िया उन्हें उठा-उठा कर धूल फूँक-फूँक कर खाने लगी। यह देख कर लड़के ने पूछा, "क्यों नानी, जामुन तो काफी गरम हैं न ?"

औवैयार ने उत्तर दिया, "बेटा, कहाँ ? ये तो ठंडे हैं।"

लड़के ने फिर पूछा—"अच्छा नानी, आप तो कहती हैं ये गरम नहीं हैं। फिर आप इन्हें फूँक-फूँक कर क्यों खा रही हैं ?" कह कर लड़का हँस पड़ा।

औवैयार नानी को अब अपनी भूल मालूम हुई और वह बहुत शर्मिन्दा भी हो गई। एक चरवाहे के लड़के के आगे वह हार गई थी। वह यों ही बिना बोली चलती बनी। लड़का खूब हँसता रहा।

औवैयार ने अपनी इस हार के बारे में कहा—

करूंगाली कट्टैक्कु नाणाक्कोडाली
इरूंकदली तंडुक्कु नाणुम-पेरूंगानिल कारेरूमै मेटंक्कुम कालैक्कुयान तोररट
ईरिखुं तुंजादेन कण।

अर्थात्, करूंगाली नामक एक पेड़ है। वह बहुत कठोर होता है। वह बहुत से काटा जाता है। फिर भी इसके काटने से कुल्हाड़ी की हानि नहीं होती। पर कुल्हाड़ी से केले के पेड़ को काटने लगे तो कुल्हाड़ी बिगड़ जाती है। बाद में काटने के लायक नहीं रहती। ठीक वैसे ही बड़े-बड़े विद्वानों को वादविवाद में हराने पर भी मुझे इस चरवाहे के लड़के से हार खानी पड़ी। इस कारण मेरी आँखों की पलकें दो दिन तक नहीं लगेंगी, अर्थात् मुझे नींद नहीं आयेगी।





"पूज्य गुरुदेव ! मैं आपके गुरुकुल में अध्ययन करने के लिए आया हूँ।"

एक प्राचीन लोककथा

सत्यकाम

रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री

ऋषि के आश्रम में विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी। इसका कारण यह था कि उनके पढ़ाने-लिखाने का ढंग जितना आकर्षक था, उतनी ही सुन्दर लोकजीवन की भी वे शिक्षा देते थे। समूचे देश में गौतम के विद्यार्थियों की धाक रहती थी, और देश के कोने-कोने से उस समय विद्यार्थियों के प्रवेश करने की भीड़ इकट्ठी हो जाती थी, जब अध्ययन का नया वर्ष चालू होता था।

एक वर्ष जब प्रवेश पानेवाले विद्यार्थियों की भीड़ शान्त हो गई और अध्ययन का क्रम चलने लगा, तब एक दस वर्ष के सुन्दर तथा स्वस्थ बालक ने आकर गौतम के चरणस्पर्श किये। उसके हाथ में न समिधा थी और न कमर में मूंज की मेखला। मृगचर्म और जनेऊ भी उसने नहीं धारण किया था। विद्यार्थियों से घिरे हुए गौतम का चरणस्पर्श उसने जिस साहस से किया, उसी साहस से विनयपूर्वक उसने निवेदन भी किया। उसने कहा—

"पूज्य गुरुदेव ! मैं आपके गुरुकुल में अध्ययन करने के लिए आया हूँ। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार ही चलूँगा और गुरुकुल के नियमों का विधिवत् पालन करूँगा। मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे स्वीकार करें, गुरुदेव।"

सीधे-सीधे और सरल प्रकृतिवाले बालक के इन निश्छल शब्दों से गौतम का हृदय द्रवित हो गया, और उधर आश्रम के विद्यार्थियों में फुसफुसाहट शुरू हो गई।